Towards Gender Equity

संगिनी

वर्ष : 2 • अंक : 3 • अक्टूबर-दिसम्बर 2004

दलित विशेषांक

सीमित वितरण हेतु

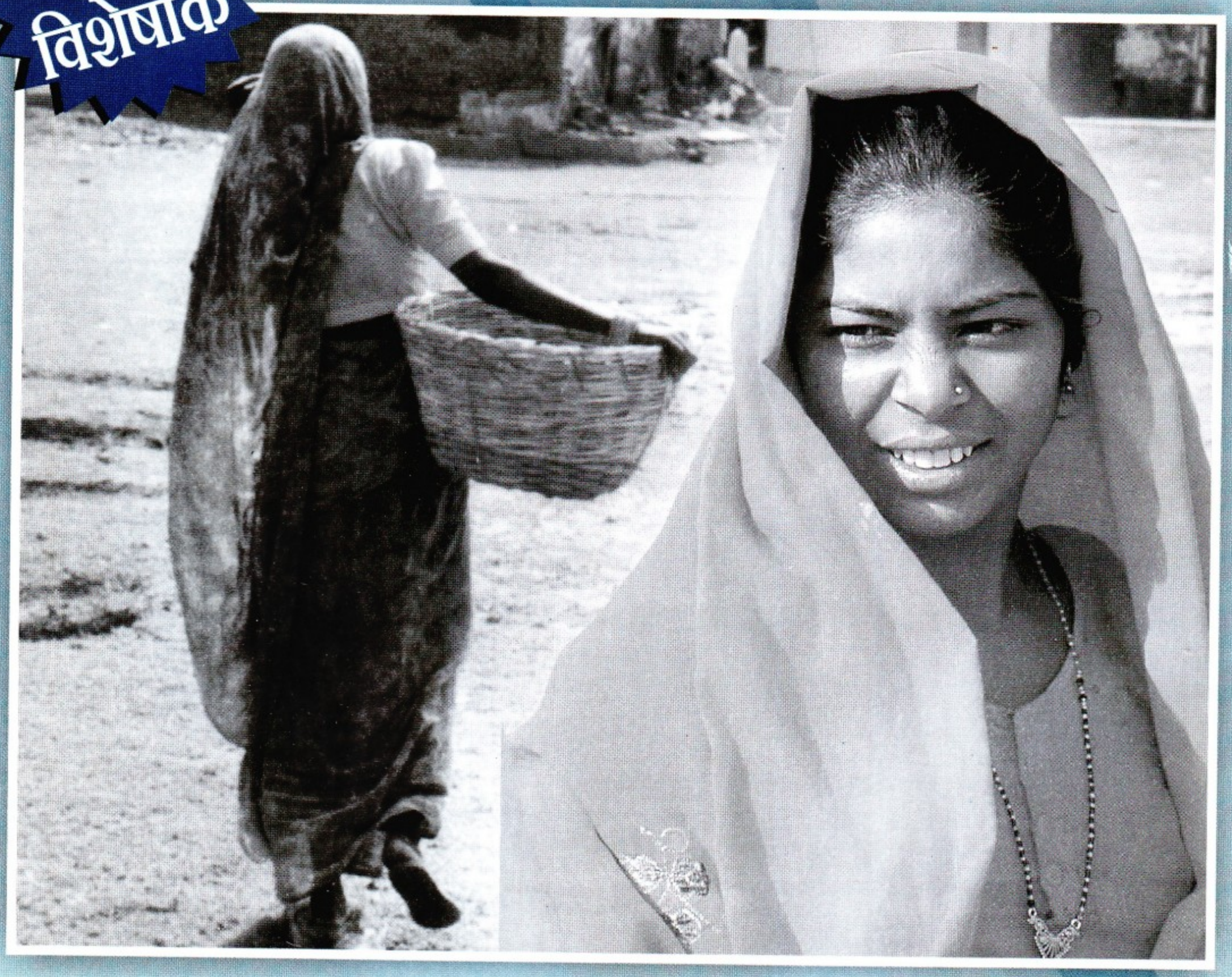

दलितों में भी दलित हैं महिलाएं

संगिनी
वर्ष : 2 • अंक : 3 • अक्टूबर-दिसम्बर 2004

अनुक्रमणिका

- दलितों में भी दलित हैं महिलाएं 2
- महिला नेतृत्व की मिसाल केसरबाई 3
- सच्ची आजादी के संघर्ष में मिली सफलता 4
- जातिवादी मानसिकता से लड़ाई एक चुनौती 6
- घर से बेघर, झेल रहें विस्थापन का कहर 8
- आजाद देश में मिली गुलामी की जिंदगी 9
- छुआछूत की आड़ में शोषण की शिकार 10
- संगिनी की गतिविधियां 12–13
- संविधान और दलित अधिकार 14
- इंटरव्यू : दलितों को सामाजिक आंदोलन का सपोर्ट चाहिए 16
- जानिए अपने अधिकार 18
- दलित हितों का संरक्षक पीसा कानून 20
- छुआछूत खत्म होने तक लडूंगी : लालीबाई 22

संगिनी

सम्पादक मण्डल : प्रार्थना मिश्रा
अनुपा
सौमित्र राय
विशाल दुबे

टाइपिंग / कम्पोजिंग : निरंजन वर्मा

वित्तीय सहयोग : एक्शन एड

आकल्पन एवं मुद्रण : मेश प्रिन्टस, भोपाल
फोन 0755–2574421

संगिनी
ई-6/127, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016.
फोन : 0755-5276158,
ई-मेल : sanginicenter@rediffmail.com,
sangini_center@yahoo.com,
sanginiresc@mantrafreenet.com

अपनी बात

दलित, वह भी महिला होना एक ऐसा अभिषाप है, जिसके भंवर में फंसकर किसी व्यक्ति का आगे बढ़ना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। समाज का एक बड़ा हिस्सा इसी भंवर में फंसा हुआ है। गाहे–बगाहे इसमें विकास की बात कही–सुनी जाती है, पर वास्तविक विकास कितना और कैसा हुआ है, यह हम सभी जानते हैं।

दलित एजेंडा, महिला नीति, स्थानीय स्वशासन में इन वर्गों के लिए आरक्षण, जमीन पर स्वामित्व आदि अनेकों प्रयास सरकारी, गैर सरकारी स्तर पर किए गए, पर जमीनी स्तर पर इन वर्गों के जीवन में कितना बदलाव आया, यह एक बड़ा प्रश्न है।

आज भी सामंती भ्रष्टाचार, सिर पर मैला ढोने की विवशता, छूआछूत, धार्मिक स्थानों पर जाने की पांबंदी, बेगारी, रोजगार के सीमित अवसर, अमानवीय परिस्थितियों में यह जातियां जीने की मजबूरी झेल रही हैं। सामाजिक समरसता की बात करने वाले समाज के दूसरे हिस्से ने भी इन वर्गों के लिए अपनी चिंताएं बौद्धिक चर्चाओं में ही दिखाईं। वास्तव में समाज का एक बड़ा हिस्सा इनकी कार्रवाइयों के प्रति असंवेदनशील रहा है। यदा–कदा समाचार पत्रों में छपने वाली लालीबाई, केसर बाई, मुनिया बाई आदि की कहानियां इसी मानसिकता को उभारती हैं।

दूसरी ओर अनेकों सकारात्मक उदाहरण हैं, जहां दलित महिलाओं ने अपनी पहल पर समाज की मुख्य धारा के साथ कदम मिलाने की कोशिश की है। बावजूद तमाम विरोधों, प्रतारणा के यह महिलाएं पंचायतों, स्वसहायता समूहों, स्थानीय निकायों के माध्यम से अग्रणी भूमिका में आई हैं। सवाल है इन्हें संबल देने का। इस महती जिम्मेदारी के साथ स्वैच्छिक संस्थाओं, सरकारी विभागों को दलितों के हित में काम करने की जरूरत है। समाज के एक बड़े हिस्से में दलित जीवन की परिस्थितियों से अवगत कराने और उनके प्रति संवेदनशीलता बढ़ाने के प्रयास ही चल रहे हैं। साथ ही जरूरत इस बात की भी है कि सर पर मैला ढोने जैसे नारकीय काम से हटाकर उनकी आजीविका के दूसरे विकल्पों को खोजने में मदद करें। निर्धनतम लोगों की मदद की सरकारी योजनाओं के साथ उनका जुड़ाव हो, दलित अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों, समाज में उन्हें बराबरी का सम्मान मिले, यही हम सबकी इच्छा है। इसके लिए साझी कोशिशों की जरूरत है।

दलितों में भी दलित महिलाओं की स्थिति के बारें में संगिनी का यह अंक केंद्रित है। इस अंक में हमने नेतृत्व की लड़ाई लड़ रही केसरबाई, छूआछूत के खिलाफ खड़ी हुई लालीबाई, सर पर मैला ढोने के खिलाफ लड़ने वाली बेरी बाई के प्रयासों को उभारने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक आंदोलन तथा दलित महिलाओं की स्थिति पर बातचीत, अनुसूचित जाति, जनजाति निवारण अधिनियम, पीसा कानून, संविधान में दलित अधिकार आदि विषयों पर सामग्री देने की कोशिश की गई है। महिला अधिकारों और हिंसा से मुक्त समाज में दलित सशक्तिकरण एक आवश्यक पहलू हैं। हमारे इस अंक के बारे में अपनी टिप्पणी, प्रतिकिया का हमें इंतजार रहेगा।

प्रार्थना मिश्रा

दलितों में भी दलित हैं महिलाएं

भारत शर्मा

आधुनिकीकरण के साथ लोगों की जीवनशैली तो बदली है, लेकिन जातिवादी मानसिकता से भरी उनकी सोच नहीं । यही कारण है कि आज भी पितृसत्तात्मक समाज में अगर दूसरे समाज को दलित करना हो तो सबसे पहले महिलाओं पर ही हमला किया जाता है ...

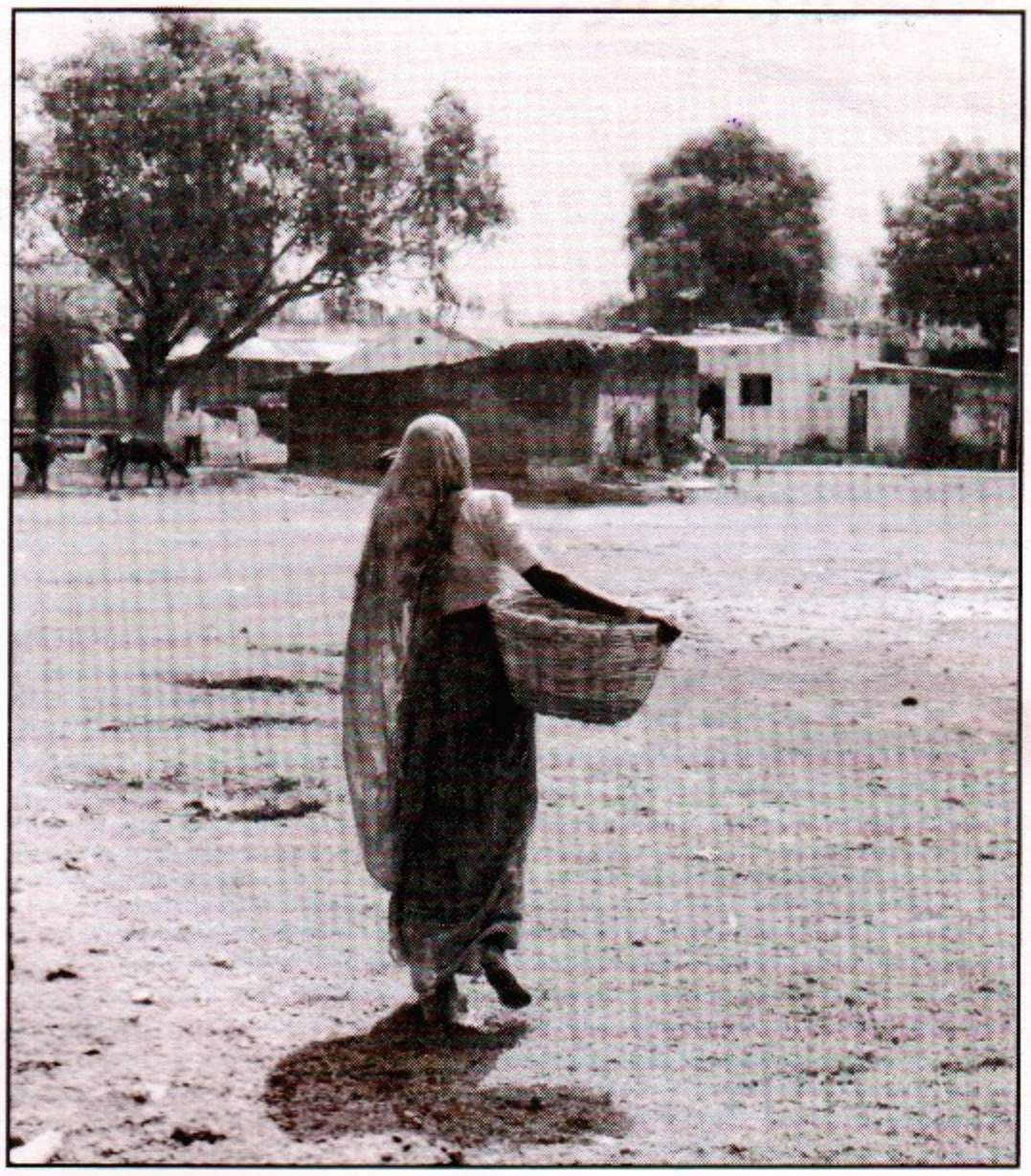

सामाजिक विकास के दौर में हमारे समाज के नीति निर्धारकों ने लोगों को शारीरिक के साथ–साथ आर्थिक व मानसिक गुलाम बनाने के लिये वर्ग व्यवस्था स्थापित की। इस व्यवस्था में जो वर्ग काम से दूर रहा वह सवर्ण रहा और जो मेहनतकश था उसे अछूत बना दिया गया। इस पूरी व्यवस्था को धर्म की चाशनी में इस कदर डुबोया गया कि लोग चाहकर भी उसका विरोध करने का साहस आज तक नहीं जुटा पाये। सामंती व्यवस्था के इन पैरोकारों ने दलितों को सम्पत्ति रखने या शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार नहीं दिया। वेदपाठ सुनने पर इनके कान में पिघला हुआ सीसा डालने की तथा उनका उच्चारण करने पर मृत्यु दण्ड देने की व्यवस्था भी की गयी।

इस पूरी व्यवस्था में सर्वाधिक भार जिस वर्ग पर पड़ा, वह दलित महिलाओं का वर्ग था, जिसे समाज के कथित उच्च वर्ग से साथ–साथ अपने ही समाज के उस पुरूष वर्ग का भी हमला सहना पड़ा जो अपनी सामाजिक स्थिति को लेकर कुंठित हो चुका था। अम्बेडकर ने सामाजिक उत्पीड़न को चरणबद्ध तरीके से पेश किया था। उसमें उन्होंने सबसे निचले स्थान पर अगर दलित महिलाओं को रखा था तो उसका संभवतः कारण यही था। धर्मशास्त्रियों ने दलित महिलाओं को किसी भी प्रकार के अधिकार देने की बात नही कही है। महाभारत की चौपड़ में द्रौपदी को दांव पर लगाना, रामायण की सीता की अग्नि परीक्षा लेना फिर उसे महल से निकाल देना, यह बताता है कि हमारे समाज के प्रतीकों की नजर में महिला की क्या स्थिति रही है। आज भी पितृसत्तात्मक समाज में अगर दूसरे समाज को दलित करना हो तो सबसे पहले महिलाओं पर ही हमला किया जाता है। यही कारण है कि साम्प्रदायिकता या जातिवादी उन्माद में हमेशा ही सबसे पहले महिलाओं को निशाना बनाया जाता है। वह आतंकियों के लिए साफ्ट टारगेट होती हैं। सामंती समाज में अपने ही गांव की कई दलित महिलाओं के साथ अनैतिक संबंध होना शान की बात मानी जाती थी। आज समाज बदला है, पर सामंती सोच नहीं बदली। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो में वर्ष 2000 में जारी आंकड़ों में बताया गया है कि देश में प्रतिदिन औसतन तीन महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है। बाद के वर्षों में हालात और गंभीर हुए हैं।

वर्ग व्यवस्था के पैरोकारों ने दलितों को सम्पत्ति व शिक्षा से वंचित रखने का जो षड़यंत्र रचा था, उसे आजाद भारत में भी खत्म नही किया गया। नतीजन सम्पत्ति के अभाव में दलित पलायन करने को मजबूर हुए, या फिर खेत में मजदूरी करने को। इस स्थिति में भी दलित महिलाओं को पुरूषों से कम भुगतान आज भी किया जाता है, साथ ही उन्हें यौन उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता है। 1991 की जनगणना के अनुसार कुल महिलाओं का 16.3 फीसदी हिस्सा दलित महिलाओं का है। इसमें से 4/5 वां हिस्सा गांव में रहता है, जो गांव में रहने वाली कुल महिलाओं का 18 फीसदी हिस्सा है। शहरी क्षेत्र में दलित महिलाओं का 12 फीसदी हिस्सा रहता है। सम्पत्ति के अभाव में अधिकतर दलित महिलाएं मजदूरी करने को मजबूर हैं, बाल श्रमिकों की संख्या भी इनमें काफी है। गुंटूर जिले में किए गये एक व्यापक सर्वे में बताया गया है कि वहां 20 वर्ष की उम्र में आते–आते हर दलित महिला श्रम करना शुरू कर देती है। इनमें 31.6 फीसदी लडकियां बाल श्रमिक है। दलित महिलाओं पर हो रहे लगातार उत्पीड़न का एक कारण उनकी अशिक्षा भी है। 1991 की जनगणना के अनुसार दलित महिलाओं में साक्षरता की दर मात्र 23.76 फीसदी थी, जिसमें शहरी महिलाओं में यह दर 42.27 फीसदी थी, जबकि ग्रामीण महिलाओं में मात्र 19.46 फीसदी। इनमें अगर राज्यवार स्थिति देखी जाए तो बिहार में साक्षरता दर सबसे कम मात्र 7.07 फीसदी थी। राजस्थान में 8.31 फीसदी व उत्तर प्रदेश में जहां सर्वाधिक दलित रहते हैं, मात्र 10.69 फीसदी। एक अन्य सर्वे बताता है कि आर्थिक अभाव के चलते 83 फीसदी लड़कियां सैकेण्डरी स्कूल तक पहुंचते–पहुंचते पढ़ना छोड़ देती हैं।

यह आश्चर्यजनक है कि जिन प्रदेशों में प्रतिक्रियावादी ताकतें प्रभावी हैं, वहां दलित महिलाओं पर होने वाले उत्पीड़न का ग्राफ काफी ऊंचा है। 1995 से 97 तक दलित महिलाओं पर जितने अत्याचार हुए, उनमें से 70 फीसदी मामले मध्यप्रदेश, राजस्थान व उत्तरप्रदेश के थे। वहीं वर्ष 2000 में इन तीनों राज्यों में ऐसे मामले 65.4 फीसदी थे। मध्यप्रदेश में भाजपा सरकार बनने के बाद से दलित महिलाओं पर हमलों में तेजी आई है। उमा भारती के मुख्यमंत्री रहते हुए सागर जिले के पथरिया में भाजपा की दलित महिला विधायक को झण्डा फहराने से रोकने पर भी अगर भोपाल

में हलचल न हो और न्याय पाने के लिए विधायक को धरना देना पड़े तो बात साफ हो जाती है। हिन्दु प्रतिक्रियावादी ताकतों व बहुजन समाज पार्टी जैसे राजनैतिक दल का गढ़ माने जाने वाले ग्वालियर पर चंबल संभाग, बघेल खण्ड व बुंदेलखंड में दलित महिलाओं को उत्पीड़न करने की घटनाएं रोज प्रकाश में आती है। जनप्रतिनिधियों और सरपंच तक को निर्वस्त्र करने के घुमाने की घटना आम हो वहां अन्य महिलाओं की स्थिति समझी जा सकती है। हालांकि ये ताकते अपेक्षाकृत शांत महाकौशल व मालवा को भी अपनी गिरफ्त में ले रही है, सिवनी जिले का चर्चित भोमाटोला काण्ड इसका उदाहरण माना जा सकता है।

अब समस्या यह है कि लगातार प्रयासों के बाद भी स्थिति में सुधार आने की अपेक्षा गिरावट क्यों आई है, स्थिति साफ है पश्चिमी देशों में दास प्रथा को खत्म करने के जो सुधारवादी आंदोलन चले, वैसे यहां नहीं चले। महात्मा ज्योति बाफुले के सत्यशोधक आंदोलन को छोड़ दिया जाए तो शेष सभी आंदोलन ब्राहम्णवाद को इथियाने के लंपट प्रयास भर थे। महात्मा फुले के.आंदोलन का भी बाद यही हश्र किया गया। सामंती सोच के जिन लोगों ने इन्हें जिस व आधार पर गुलाम बनाया था उस सोच के खिलाफ कभी कोई आंदोलन खड़ा नहीं किया गया न ही उन्हें सम्पत्ति व शिक्षा पर इनके समान अधिकार की बात किसी ने कहीं नतीजा साफ है। वे आज भी गुलाम है। राजनैतिक ताकतों के लिए यह वर्ग आनजान वोट बैंक बना रहा, वहीं पूंजीपति और सामंती वर्ग के लिए कम कीमत पर मिलने वाला मजदूर इन्हें हक दिलाने के लिए सामंती व्यवस्था पर चोट करना जरूरी है।

मनुवादी मानसिकता और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने भी होड़ में दलित पुरूषों द्वारा भी महिलाओं का उत्पीड़न किया जाता है। कई समाजों में तो महिलाओं को प्रताड़ित करने की परंपरा तक है। पारदी समाज में प्रसव के दौरान पूरी प्रक्रिया से अकेले ही जूझना होता है। बच्चा पैदा करने से लेकर नाल कराने व नहाने तक में उसकी कोई मदद नहीं करता प्रसव के दौरान वह रूई का भी इस्तेमाल नहीं कर सकती क्योंकि रूई की बत्ती बनाकर कुल देवी के सामने जलाई जाती है, इस दौरान प्रसूता छह माह तक अछूत मानी जाती है। उसके पति को भी उसके पास जाने की अनुमति नही है, प्रसव के दौरान समाज की अन्य महिला उस महिला को तो छू सकती है पर बच्चे को नहीं ऐसा करने पर उस महिला को समाज से निकाल देने की परंपरा है। बेडिया, बाछड़ा व कुछ अन्य समाजों में महिला को बलपूर्वक वैश्यावृति के धंधे में उतारने की परंपरा भी महिला उत्पीड़न का ही हिस्सा है।

तीसरी कक्षा तक पढ़ी केसरबाई को पहले तो गांव वालों ने ही सर्वसम्मति से सरपंच बनाया और अब वे ही उसका सिर्फ इसलिए विरोध कर रहे हैं, क्योंकि केसरबाई दलित है। गांववालों के इस विरोध के बावजूद केसरबाई ने दूसरी बार चुनाव जीता और अन्याय के खिलाफ संघर्ष जारी रखा।

■ नीति दीवान

महिला नेतृत्व की मिसाल केसर बाई

सरपंच केसरबाई न तो निराश हुई और न ही कमजोर, बल्कि पूरे उत्साह के साथ आगामी पंचायत चुनाव में ग्राम पंचायत सहित जिला पंचायत से भी चुनाव लड़ने की तैयारी में जुटी हैं। कुल जमा तीसरी कक्षा तक पढ़ी 47 वर्षीय दलित जाति की सरपंच केसरबाई का संघर्ष पंचायत में लागू महिला आरक्षण के तहत चुने जाने के पूर्व से ही शुरू हो गया था। इटारसी से महज 2 कि.मी. दूर स्थित गांव सोनासांवरी में बाहर से आकर बसे कुछ लोगों द्वारा महिलाओं पर आए दिन अत्याचार करने के विरूद्ध आवाज उठाने और उन्हें जेल की सजा दिलवाने वाली कार्यकर्ता के रूप में परिचय देकर केसरबाई ने महिला नेतृत्व की शुरूआत 1993 से ही कर दी थी। दशक भर पहले हुई घटना को वे याद करती हैं वे कहती हैं कि यही वजह रही कि पहले चुनाव में दलित महिला सीट आरक्षित हुई और सबसे पहले मेरा नाम सर्वसम्मति से गांव वालों ने प्रस्तावित किया और मुझे सरपंच बनाया। अब गांव का नेतृत्व करने के कारण मेरी जिम्मेदारी तो बढ़ गई, किन्तु संघर्ष का सिलसिला थमा नहीं, बल्कि समय के साथ–साथ बढ़ता ही गया। इससे मैं आज भी जूझ रही हूं। संघर्ष की पहली घटना महिला अत्याचार के खिलाफ थी। मैं चुनाव तो जीत गई, लेकिन विरोधियों ने बदला लेने के लिए मुझे कई तरह से परेशान करना शुरू कर दिया। मैनें भी हिम्मत से काम लिया। फिर एक रात मेरे घर पर बम फेंका। उसी समय गांव वाले एकत्र हुए ओर थाने जाकर रिपोर्ट दर्ज की। बाद में उन्हें जेल भी हुई। वे मुझे जान से मारना चाहते थे। मैने कलेक्टर से सुरक्षा की मांग की, जिसके बाद मुझे दो महीने तक सुरक्षा भी मुहैया कराई गई। उस समय गुस्से से मैंने सरकार से अपनी सुरक्षा के लिए हथियार की मांग भी की थी। इस घटना से गांव का वातावरण भययुक्त हो गया। किन्तु मेरे संघर्षो का दौर अब शुरू हो चुका था। दलित और अनपढ़ महिला होने के नाते बहुत कठिनाइयां झेली। इसके बावजूद केसरबाई ने अपने पहले कार्यकाल में गांव के विकास के लिए सड़क पानी, स्कूल भवन, इंदिरा आवास, खेल मैदान, गरीबों को बिजली, पेंशन और महिलाओं के लिए स्व–सहायता समूह की मदद से डेरी और अन्य रोजगार के साधन उपलब्ध करवाए। काम की जमीनी सच्चाई और ईमानदारी ने इन्हें दोबारा 1999 के चुनाव जीतने में मदद की। इस बार सामान्य महिला सीट होने के बावजूद केसरबाई जीत गई। इस चुनाव में उन्हें महिलाओं और बुजुर्गो का सबसे ज्यादा समर्थन मिला। जिले की एकमात्र सामान्य सीट पर दलित महिला का काबिज होना और मात्र 9 वोट से चुना जाना उनके विरोधियों को उचित नहीं लगा और अब दूसरे कई आरोप लगाकर उन्हें हटाए जाने की कवायद शुरू हो गई। उन पर धारा 40 के तहत पद का दुरूपयोग करने, पति को इंदिरा आवास का लाभ दिलाने और सोसायटी का अनाज बाहर बेचने भ्रष्टाचार करने जैसे कई आरोप लगे। उन्होने स्पष्टीकरण देते हुए हर आरोपों का जवाब दिया और कानूनी लड़ाई भी लड़ी ।

शेष पृष्ठ 5 पर...

सच्ची आजादी के संघर्ष में मिली सफलता

वाल्मिकी और हैला जाति को जो दलित महिलाएं पीढ़ियों से कच्चे शौचालयों की सफाई और सिर पर मैला उठाने का काम कर रहीं थी, उन्होंने गरिमा अभियान के चलते इस गंदे काम से छुटकारा पा लिया है...

आशिफ

हम पीढ़ियों से जिस जातिगत गन्दे काम में लगे हुए थे, आज हम अपनी कोशिश से उस दलदल से निकल पाए हैं। लेकिन दलित वाल्मीकी होने और उस पर औरत होने के कारण ढेर सारी मुश्किलें आज भी हमारे सामने हैं। हमने इन मुश्किलों का डट कर मुकाबला करने की ठान ली है।'' यह बात देवास जिले के भौंरासा नगर की किरण बाई अपने गरिमा महिला समूह की बैठक में कह रही थी। किरण बाई भी इस नगर की उन दर्ज़नों महिलाओं में से एक हैं, जो दो वर्ष पहले तक अपने जाति आधारित मैला ढोने के अमानवीय काम में लगी हुई थी। लेकिन दो वर्ष पहले 21 फरवरी 2002 को एक बैठक में किरण बाई सहित सभी 26 महिलाओं ने इस अमानवीय काम को त्यागने का निश्चय किया।

मैला ढोने की प्रथा पर प्रतिबंध के लिए हमारे देश में 1993 में एक कानून भी बना, परंतु आज भी नगरों, कस्बों एवं बड़े गांवों में यह अमानवीय प्रथा जारी है। इस प्रथा में दलित महिलाएं, खासकर वाल्मिकी एवं हैला जाति की महिलाएं कच्चे शौचालयों से मल निकालती हैं एवं टोकरे में भर कर उसे गांव से बाहर फेंकती हैं। इस काम के बदले महिलाओं को प्रतिघर 5 से 20 रुपए एवं एक रोटी मिलती है, साथ ही कदम–कदम पर मिलती है ढेर सारी छुआछूत एवं भेदभाव की भावना।

लेकिन अब लगता है कि यह प्रथा लंबे समय तक जारी नहीं रहेगी। इनके पीछे यह कारण कतई नहीं है कि कानून बनने के 10 साल बाद इस अमानवीय प्रथा की समाप्ति के लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति जागरूक हो गई है। जबकि इसका कारण यह है कि किरण बाई एवं भौंरासा की अन्य महिलाओं की तरह ही देवास जिले के दूसरे स्थानों एवं प्रदेश के विभिन्न नगरों एवं गांवों में महिलाएं इस अमानवीय प्रथा की समाप्ति के लिए अपने काम को छोड़ने का निश्चय कर रही हैं। भौंरासा की महिलाएं अपने नगर में इस प्रथा को खत्म करने के बाद जिले के अन्य 12 नगरों और गांवों में गरिमा यात्रा लेकर गई और अपने समाज की महिलाओं को यह काम छोड़ने और इज्जत एवं बराबरी से जीने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। इस यात्रा में दौरान जिले की दर्जनों महिलाओं ने यह काम छोड़ दिया। भौंरोसा की बेबीबाई बताती हैं कि हम तो इस गंदे काम से मुक्त हो गए हैं, लेकिन अब हमारी ये जिम्मेदारी है कि और भी जगहों से ये काम बंद हो और हमारे समाज के लोग मान सम्मान और इज्जत से जी सकें। एक अन्य महिला सेवंतीबाई का कहना है कि हमारे देश को आजादी मिले तो सालों बीत गये, लेकिन हमें आजादी उस दिन मिली, जिस दिन हम अपने गंदे काम से आजाद हुए। लेकिन अभी भी ये आजादी अधूरी है, क्योंकि आज भी हमारे साथ जगह–जगह पर छूआ–छूत होती है और हमारे समाज के लोगों को इज्जत नहीं मिलती है। जब तक इस हालत में बदलाव नहीं आता, हमारी आजादी अधूरी है। उन्होनें कहा कि हम गरिमा यात्रा के दौरान जब देवगढ़ गांव गए तो पता चला कि वहां हमारे समाज के लोगों की कटिंग नहीं बनाई जाती है, और उन्हें कटिंग के लिए 10 कि.मी. दूर हाटपिपल्या जाना पड़ता है। हमने बहुत कोशिश कर वहां हमारे समाज के लोगों की कटिंग बनवाना शुरू की। यात्रा के दौरान रैलियां भी निकाली।

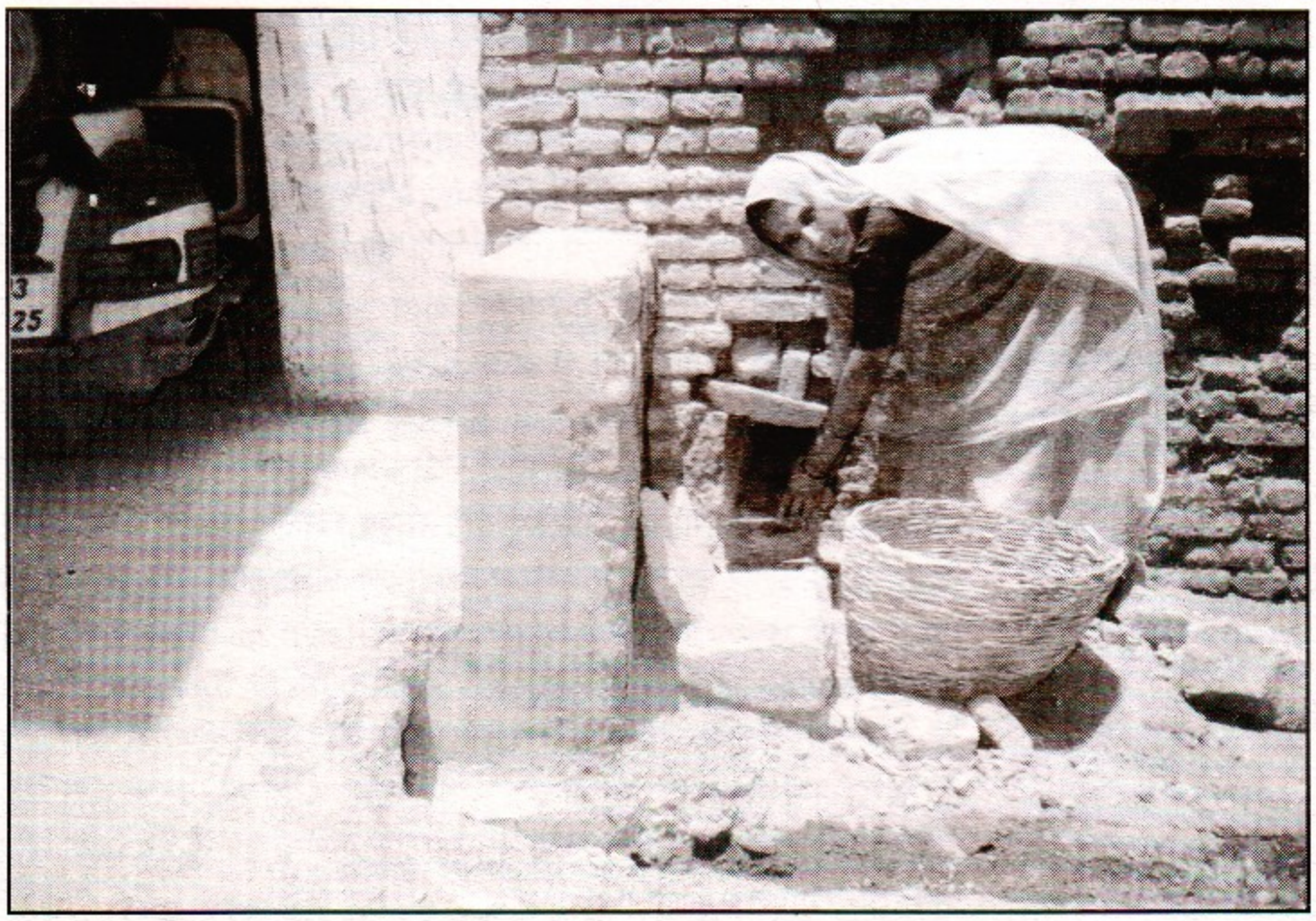

देवास जिले के ही ग्राम अमलाताज की सुलोचना बाई, लीलाबाई और सुशीला बाई ने मैला ढोने का काम छोड़ा तो उन्हें बहुत दिक्कतों का सामना करना पड़ा क्योंकि यहां उनके समाज के तीन ही परिवार हैं। सबसे बड़ी दिक्कत थी वैकल्पिक काम की। इस गांव में अन्य दलित जातियां, चर्मकार एवं बलाई जातियों के परिवार बड़ी संख्या में हैं। इन महिलाओं ने अन्य दलित महिलाएं के साथ मिलकर अपना संगठन बनाया और अब अन्य दलित महिलाऐं खेत में मजदूरी के लिए इन महिलाओं को साथ ले जाती हैं। एक चर्मकार

महिला का कहना था कि इन लोगों ने गंदा काम छोड़ दिया है, इसकी हमें बहुत खुशी है और अब हम हर मुश्किल में उनके साथ रहेंगे, क्योंकि इन्होंने बहुत बड़ा काम किया है। लीलाबाई का कहना है कि हम वो काम छोड़कर मजदूरी करने में ज्यादा खुश हैं, क्योंकि मजदूरी इज्जत का काम है। उन्होने यह भी कहा कि पहले जब हम यह काम करती थीं तो अपनी रिश्तेदारी और शादी ब्याह में भी रुक नही पाती थी, क्योंकि वहां रुकने में अगर दो दिन से ज्यादा हो जाते तो लोग हमारे घर आ कर घरवालों पर बार–बार कहते कि बास आ रही है, पाखाना साफ करो। लेकिन आज हम कहीं भी जा सकते हैं और जितनी मर्जी आए उतने दिन रुककर वापस आ जाते है।

प्रेमबाई बदलाव चाहने वाली उन नायकों में से एक हैं, जो स्वयं के साथ अपने पूरे समाज को इस प्रथा से मुक्त कर आगे बढ़ाना चाहती हैं। आज प्रेमबाई अपने प्रयासों में सफल भी हो रही हैं। उनके प्रयासों के चलते देवेन्द्र नगर एवं पुराना पन्ना की छह और महिलाओं ने भी इस काम से अलग होने और संगठित होने का निर्णय ले लिया है। प्रेमबाई का कहना है कि पहले तो औरतें इस काम को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होती हैं। वे कहती हैं कि ये तो हमारी जागीरदारी है और ये काम तो भगवान ने हमारी जाति के लिए ही बनाया है। काम छोड़ने के बाद गांव वालों का दबाव और पैसों की तंगी जैसी कुछ परेशानियां तो आती ही है, लेकिन लगातार समझाने से उन्हें सच्चाई समझ में आती है ओर वे इस काम को छोड़ देती हैं। काम छोड़ चुकी औरतें अब कहती हैं कि इसमें उन्हें थोड़ी बहुत दिक्कत जरूर आई, लेकिन अब हमारे बच्चों को जीवन में गंदा काम कभी नही करना पड़ेगा। इसी तरह मंदसौर जिले के ग्राम

दलित महिलाओं के संघर्ष और सफलता की गाथा किसी एक नगर और एक जिले तक सीमित नहीं है। प्रेमबाई भी पहले पुराने पन्ना शहर में अपने पुश्तैनी काम में लगी हुई थी, लेकिन उन्होने भी काफी सोच विचार और कोशिशों के बाद इस प्रथा से मुक्ति पा ली।

धारियाखेड़ी की लालीबाई भी कुछ अरसे पहले तक मैला ढोने के काम में लगी हुई थी, लेकिन उन्होने भी अपने सम्मान के लिए यह काम छोड़ने का मन बनाया ओर उस पर अमल किया। लालीबाई ने मंदसौर जिले की अन्य महिलाओं को काम छोड़ने के लिए प्रेरित करने में सक्रिय भूमिका निभाई और इसके चलते 12 महिलाओं ने मैला ढोने की प्रथा से मुक्ति पाई। धारिया खेड़ी में लालीबाई द्वारा किए जा रहे प्रयासों से गांव में ही उनकी जाति के लोगों की कटिंग शुरू हो गई है। अब लाली बाई अपना समय अपने काम के साथ–साथ अपने वंचित समुदाय को संगठित करने में भी लगा रही है और सफल भी हो रही हैं।

इस तरह समाज की जाति व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर खड़ी एवं पीढ़ियों से वंचित रही दलित महिलाएं अपने समुदाय की सच्ची आजादी प्राप्त के लिए संघर्ष कर रही है, जिसमें जातिगत काम की मजबूरी न हो, भेदभाव न हो, छुआछूत न हो। उन्हें अपने संघर्ष में सफलता भी मिल रही है।

पृष्ठ 6 का शेष...

महिला नेतृत्व की मिसाल केसर बाई

इन आरोपों के कारण एक बार आठ माह तक पद मुक्त किए जाने के पश्चात उन्हें दुबारा बहाल किया गया, क्योंकि इंदिरा आवास का प्रकरण जो पहले कार्यकाल का था दूसरे सत्र मे उठाया गया और अन्य आरोप भी गलत निकले। वे पूछती हैं कि सरपंच बनने से क्या गरीबी दूर हो जाती है? हम तो पंचायत में चुने जाने के पूर्व से ही गरीब थे और आज भी है। पहले की पंचायत व्यवस्था में सरपंच का गरीब होना वास्तव में नामुमकिन हो सकता है। ढ़ाई माह तक पद मुक्त रहने और कमिश्नर की जांच के बाद दुबारा पद मिलने, आरोपों का जवाब देने के लिए 16 बार जांच चलने जैसी कानूनी कार्यवाही के चलते इस कार्यकाल में न तो ठीक से ग्रामभाएं ही हो सकी न ही विकास के कोई काम । काम न होने की वजह से ग्रामीणों का मेरे प्रति नाराज होना वाजिब है मगर मैं मजबूर हूं। पूरा कार्यकाल इस झगड़े में बीत गया और अभी भी जांच का काम जारी है। केसरबाई कहती है कि इन आरोपों के खिलाफ अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए मैने लगातार मानसिक हिंसा के साथ ही शारीरिक हिंसा झेलकर गांव में नेतृत्व करने की कीमत चुकाई। एक तरफ भ्रष्टाचारी होने का आरोप और दूसरी तरफ महिला और दलित होना मेरे खिलाफ बने माहौल का बड़ा कारण बन गया। इस विषम परिस्थिति में भी मैं डरी नहीं और न ही निराश हुई। शायद डरना मेरी फितरत में ही नहीं है। वे स्वीकारती हैं कि महिला होने के नाते ज्यादा कठिनाईयां सामने आई। अगर महिलाएं संगठित हों तो ज्यादा काम कर सकती हैं। वैसे हमारी पंचायत में महिला सचिव होने से बहुत फायदा है। हम मीटिंग में भी साथ जाते हैं और ठीक से काम कर पाते हैं, वो मेरी बात सुनती हैं और एक दूसरे की सलाह से हम आगे का रास्ता तय कर पाते हैं। महिलाओं को संदेश देते हुए केसरबाई कहती हैं। कि हमें डरना नहीं, बल्कि व्यवस्था से लड़ना होगा। मैने भी अपनी जिंदगी में सघर्ष करते हुए यही सीखा। महिला आरक्षण के बलबूते पर सत्ता में महिला भागीदारी का जीवंत उदाहरण बनी केसरबाई का आत्मविश्वास रोजमर्रा के संघर्षो ने और बढ़ा दिया। वे कहती हैं मैं सीढ़ी दर सीढ़ी आगे बढ़ना चाहती हूं। चाहे कितना भी कठिन और लम्बा रास्ता तय करना पड़े।

महिला और दलित होना मेरे खिलाफ बने माहौल का बड़ा कारण बन गया। इस विषम परिस्थिति में भी मैं डरी नहीं और न ही निराश हुई। शायद डरना मेरी फितरत में ही नहीं है। वे स्वीकारती हैं कि महिला होने के नाते ज्यादा कठिनाईयां सामने आई। अगर महिलाएं संगठित हों तो ज्यादा काम कर सकती हैं।

जातिवादी मानसिकता से लड़ाई बड़ी चुनौती

मध्यप्रदेश में दलितों के साथ अत्याचार और शोषण की दास्तान बहुत पुरानी है। हालात आज भी ज्यादा नहीं बदले हैं, ऐसे में यह कहना गलत होगा कि दलित महिलाएं अपने हक के लिए जागरूक हो रही हैं। दसअसल राजनेता खुद नहीं चाहते कि ऐसा हो...

■ ऋचा साकल्ले

वक्त था मध्यप्रदेश के विधानसभा चुनाव का दूसरे राज्यों की तरह मध्यप्रदेश में भी बीजेपी इंडिया शाइनिंग और फील गुड वाले अपने ग्लैमेराइज्ड नारों के साथ वोट रिझाने में लगी थी। खुद प्रधानमंत्री (तत्कालीन) अटल बिहारी वाजपेयी ने मध्यप्रदेश –छत्तीसगढ़ में चुनाव प्रसार की कमान संभाली थी। अपनी प्रचार टुकड़ी के साथ भोपाल पहुंचे वाजपेयी का मंच भी दशहरा मैदान में सजाया गया और आपको याद दिला दूं कि ये मंच कोई आम मंच नहीं था। बकौल वाजपेयी उस वक्त की स्टार प्रचारक साध्वी उमा भारती "इस मंच पर इतिहास रचा जा रहा है। "क्यों ?क्योंकि उस मंच पर, देश के प्रधानमंत्री अपनी प्रचार टुकड़ी में आए राष्ट्रीय और क्षेत्रीय नेताओं के साथ, मध्यप्रदेश के कांग्रेसी मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह के शासनकाल में उन्ही के गृहनगर यानी राजगढ़ में सवर्ण जाति के लोगों द्वारा निर्वस्त्र कर घुमाई गई एक दलित महिला को लाकर खड़ा करने में सफल हो गए थे। वो दलित महिला जमुनी देवी आज तक नहीं जान पाई कि उसे मंच पर क्यो लाया गया। हां बीजेपी नेता भली भांति जानते थे की लुटी पिटी जमुनी देवी को मंच पर सामने लाकर खड़ा करने से उन्हें क्या मिलेगा। ये बात सिर्फ बीजेपी की नहीं है। अगर बीजेपी के किसी मुख्यमंत्री के काल में ऐसा हुंआ होता तो शायद कांग्रेस भी ऐसा ही करतीं दरअसल मुद्दा सिर्फ ये है कि जातिगत व्यवस्था में बंटे हमारे देश में जाति और महिला वोट का पर्याय बन कर रह गए है। हमारे नेताओं को पता है कि चुनाव के वक्त किसी दबी–कुचली,सताई, पिटी–पिटाई, पीड़ित, निर्वस्त्र की गई, डायन बना कर मारी गई, प्रतिष्ठा या इज्जत के दंभ पर बलात्कार का शिकार बनी अशिक्षित पिछड़ी और उपर से दलित महिला को कब, कहां कैसे और क्यों सामने लाना है और उसके हितों की बात करना है।

ये हास्यास्पद है लेकिन सच भी कि हमारे जनप्रतिनिधि खुद को अभी तक जातिप्रथा के निकृष्ट घेरे से अलग नही कर पाए है तो आम लोगों से क्या अपेक्षा की जाए इसी साल पंद्रह अगस्त को मध्यप्रदेश के ही बालाघाट जिले के एक गांव में मुख्य अतिथि के रूप में झंडा फहराने के लिए बुलाई गई एक दलित महिला विधेयक को सवर्ण नेताओं ने झंडा नही फहराने दिया। दतिया जिले के जिगना गांव की एक दलित विधवा गांव के दबंग लोगों से परेशान हो उनकी शिकायत करने थाने पहुंच गई तो दबंगों को लगा की एक दलित विधवा महिला ने उनके सामने ये हिम्मत कैसे की उन्होने इसका बदला उसे निर्वस्त्र कर मारपीट करके लिया। पुलिस को इस मामले की पूरी जानकारी थी कि लेकिन पुलिस दबंगों के खिलाफ चुप रही। शिवपुरी जिले के एक गांव में दलित महिलाएं जिस कुएं से पानी लाती है वो सवर्णो का है और वो उन्हें पानी नही भरने देते विरोध के बावजूद जब दलित महिलाएं एकजुट होकर पानी भरने गई तो उन पर हमला किया गया मारपीट की गई। उनके पति जब शिकायत लेकर तत्कालीन पंचायत और ग्रामीण विकास मंत्री श्री नरेंद्र तोमर के पास पहुंचे तो वहां से खदेड़ दिए गए। मुरैना में आंगनवाडी और सिलाई–कढ़ाई केंद्र में नौकरी मांगने गई एक महिला ने उस केंद्र की सवर्ण जाति की संचालिका पर उसे चार लोगो की हवस का शिकार बनने के लिए मजबूर करने का आरोप लगाया पुलिस ने मामला दर्ज तो किया लेकिन गिरफ्तारी किसी की भी नहीं हुई। इसी तरह भिंड जिले के चंदनपुरा गांव की धनवंती जाटव की कहानी भी ज्यादा पुरानी नहीं धनवंती अपने गांव के सवर्ण इज्जतदार लोगों से अपनी इज्जत बचाने के लिए जिले के एसपी को अपनी कहानी सुनाने के लिए एसपी कार्यालय के चक्कर काटती रही यहां तक कि सुनवाई न होती देख उसने आत्महत्या करने की धमकी भी दे डाली लेकिन किसी ने नहीं सुनी। जब एक क्षेत्रीय समाचार चैनल ने प्रशासन के समक्ष उसकी बात रखी तो जवाब था। "जांच के बाद ही कोई कार्रवाई होगी।"

ऐसी उथली सोच की शिकार सर्फ हमारी राजनैतिक, प्रशासनिक और सामाजिक इकाईयां ही नही बल्कि हमारी आने वाली पीढ़ी भी है। दतिया जिले के तिवारीपुरा गांव में मध्यान्ह भोजन बनाने वाली दलित महिला के हाथ से बना खाना खाने से स्कूल के बच्चों ने इंकार कर दिया और उसके हाथ का बना खाना जानवरों को खिलाया जा रहा है। आजादी के 57 साल बाद भी हमने जहां से शुरूआत की हम वहीं है। .सोच में कोई नयापन नहीं कोई खुलापन नहीं। आखिर क्यों बड़ा आंदोलन इस आदिम निरंकुश जातिवादी व्यवस्था के खिलाफ आज तक खड़ा नही हो पाया। नेता भले ही आंकड़े दिखाकर ये कहें कि स्थिति में काफी सुधार हुआ है लेकिन इसी साल घटी ये घटनाएं एक तुच्छ, स्वार्थी संकीर्ण समाज की तस्वीर बनाते है। सिर्फ इसे सुधार मानना कि अब दलित आदिवासी महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है गलत है क्योंकि सवर्णों की सोच का कैनवास जस का तस ही है। देश में 250 मिलियन की आबादी दलितों की है जिसमें 90 प्रतिशत दलित महिलाएं गांवों में है और करीब 75 फीसदी दलित आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन जी रही है। इस आबादी में लड़कों का साक्षरता प्रतिशत जहां 31, 48 है वहीं दलित लड़कियों की साक्षरता केवल 10.93 प्रतिशत है। जहां तक दलित महिलाओं के पिछड़ेपन का सवाल है तीन मुख्य पहलू हैं जो अंतसंबधित है।

पहला– राज्य अर्थव्यवस्था , संस्कृति और दूसरे संसाधनों पर मध्यम और संभ्रात वर्ग का जबर्दस्त एकाधिकार।

दूसरा – ग्रामीण क्षेत्रों में दलित महिलाओं पर जातिवाद का कटट्र प्रभाव।

तीसरा – दलित पुरूषों का दलित महिलाओं और लड़कियों पर नियंत्रण

वैसे ही ग्रामीण दलित, महिलाएं कुपोषण श्रम के लैंगिक विभाजन बाल विवाह और गरीबी की मार झेल ही रही है फिर जातिवादी ढांचे में भेदभाव और छूआछात को लेकर उस पर हो रहे अत्याचार उसे इतना असुरक्षित कर रहे है कि वो कुछ सोच–समझ ही नहीं पाती है। नई आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप पिछले प्रद्रह सालों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह चौपट हुई है और खामियाजा किसी और को नही दलित पिछड़ी महिलाओ को उठाना पड़ा है। पंचायतों राज्य के जरिए सशक्तिकरण की एक बेहतरीन कोशिश जरूर की गई लेकिन वहां भी पुरूषोचित दभ ओर दबदबे ने मौका मिलने के बावजूद उन्हें केवल कठपुतली बना छोड़ा। यदि हमारे ओपिनियन लीडर्स की ये बात मान भी ली जाए कि शिक्षित दलित महिला तक लाभ पहुंच रहे है लेकिन क्या कभी उन्होने इन शिक्षित दलित महिलाओं से उनके संघर्ष को लेकर सवाल किये है जातिवादी पाखड और भेदभाव की छाया न तो उन्हें कार्यस्थल पर बख्शती है और न ही शहरी आवासीय कॉलोनी में एससी–एसटी की आरक्षित सीटों को लेकर हुए एक अध्ययन में दो मुद्दे सामने आए हैं।

शेष पृष्ठ 24 पर...

नई आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप पिछले प्रद्रह सालों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह चौपट हुई है और खामियाजा किसी और को नही दलित पिछड़ी महिलाओ को उठाना पड़ा है। पंचायतों राज्य के जरिए सशक्तिकरण की एक बेहतरीन कोशिश जरूर की गई लेकिन वहां भी पुरूषोचित दंभ और दबदबे ने मौका मिलने के बावजूद उन्हें केवल कठपुतली बना छोड़ा।

घर से बेघर, झेल रहे विस्थापन का कहर

खेतिहर मजदूर के रूप में काम करने वाले दलित आदिवासियों का काम की तलाश में पलायन कोई आदिवासियों का काम की तलाश में पलायन कोई नई बात नहीं है। इसे रोकने के लिए सरकार ने जो कदम उठाए हैं, वे अगड़ी जातियों के विरोध से बेसअर साबित हुए हैं ....

■ सौमित्र राय

सिवनी जिले के उगरीथाना गांव का मदन वानखेड़े आज इस बात पर खुश है कि पत्थर की खदान में काम कर उसे और उसकी पत्नी को रोजाना 80 रुपए मिल जाते हैं, जिससे पांच लोगों के परिवार का पेट आसानी से भर जाता है।

लेकिन उसी के गांव का कालूराम इतना खुशनसीब नहीं है। तीन माह पहले खून की उल्टी होने पर जब उसे अस्पताल में दाखिल किया गया तो घर पर खाने का एक दाना भी नहीं था। उसकी पत्नी उर्मिला ने पास के एक साहूकार से मदद मांगी तो उसने ढाई एकड़ जमीन के कागज पर अंगूठा लगवा लिया और बदले में 15 हजार रूपए दिए। अब उर्मिला अपने पति की जगह काम पर जाती है, जहां ठेकेदार और सुपरवाइजर की गंदी निगाहें उसे हमेशा घूरती रहती हैं। उर्मिला कहती है, जब तक साहूकार के पैसे नहीं चुकाएंगे, तब तक गांव वापस नहीं जा सकते।

सिवनी, मंडला, बालाघाट और डिंडोरी जिलों में काम की तलाश में विस्थापन एक आम परंपरा है। बारिश अच्छी हुई तो छह–सात माह के खाने का इंतजाम आसानी से हो जाता है। मगर पिछले तीन साल से सूखे का संकट झेल रहे इन दलित आदिवासियों के लिए खदानों, निर्माण क्षेत्र या ईंट के भट्टों में काम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता। विस्थापित दलित आदिवासियों की हालत पर किए गए एक सर्वेक्षण के मुताबिक करीब 60 फीसदी मामलों में पूरा परिवार ही पलायन करता है, ताकि जितने हाथ उतने काम वाली बात लागू हो। वैसे पत्थर खदानों में सरकारी रेट के मुताबिक न्यूनतम मजदूरी 90–100 रूपए है, लेकिन मिलते हैं 40–50 रूपए। उर्मिला को खदान में काम पर इसीलिए जाना पड़ा, क्योंकि पति रोज 20 रूपए की शराब पी जाया करता था। बाकी बचे 20 रुपए में वह अकेली पांच लोगों को खाना कैसे खिलाती ?सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि ज्यादातर दलित आदिवासियों पर बैंक का कर्ज बकाया है। ऐसे में सरकार से आर्थिक मदद की उम्मीद न होने के कारण ही वे गांव से पलायन कर पड़ोसी जिलों के साहूकारों के चुंगल में फंसते हैं। वाड़खेड़े ने पिछले साल एक साहूकार से दो हजार रुपए लिए थे, जिस पर 36 प्रतिशत सालाना के हिसाब से ब्याज चढ़ रहा है। कमजोर सी दिखने वाली उसकी पत्नी रोजाना 10 ट्राली बोल्डर ढोती है, तब जाकर कहीं गुजारा हो पाता है।

हालांकि मध्यप्रदेश के ज्यादातर इलाकों में स्थानीय साहूकारों को सूद पर पैसा देने का लाइसेंस नहीं मिला है, मगर स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि कहते हैं, जब तक कोई सरकार से या जिला प्रशासन से इस बात की शिकायत न करे पुलिस भी कोई कार्रवाई नहीं करती। दुखली गांव की बायित्रीबाई के पति मनिराम को टी.बी. है। इसी वजह से वह ईंट भट्टे पर काम नहीं कर पाता। बायित्रीबाई ने उसके इलाज पर साहूकार

फोटो : अनिल दीवान

से कर्ज लेकर करीब 40 हजार रूपए खर्च कर दिए, पर कोई फायदा नहीं हुआ। अब बायित्रीबाई खुद काम पर जाती है और उसका पति साहूकार के खेतों पर बंधुआ मजदूरी करता है। विस्थापना की पीड़ा झेल रहे दलित आदिवासियों की हालत यह है कि भूख, कुपोषण और बीमारियों के चलते उनका शरीर तो जर्जर हो ही चुका है, परिवार के अन्य सदस्यों, खासकर बच्चों पर घर की खराब माली हालत का भी बेहद बुरा असर पड़ता है। मदन वानखेड़े ने अपने किशोर बेटे को भी पत्थर तोड़ने के काम में लगा दिया हैं। बमुश्किल तीसरी कक्षा तक पढ़ पाए उसके बेटे को हिसाब नहीं आता और वह भी अपने पिता के समान मजदूरी के पैसे को तकदीर का लिखा मानता है। उर्मिला की बेटी रामकली भी जवान हो रही है। ठेकेदार की नजर उस पर पड़े, उससे पहले ही रामकली की शादी की चिंता उर्मिला के चेहरे पर साफ नजर आती है। हालांकि रोजगार गारंटी योजना के तहत राज्य सरकार विभिन्न जिलों में राहत कार्य चलाती है, जिनमें भूमिहीन श्रमिकों और दलित आदिवासियों को बड़े पैमाने पर रोजगार मिलता है, मगर निजी क्षेत्र के असंगठित उद्योगों में मजदूरी की दर सरकारी औसत दर से कहीं ज्यादा होने के कारण अधिक कमाई के लालच में लोग परिवार सहित गांव से पलायन कर जाते हैं। मिसाल के तौर पर एक साथ ज्यादा लोगों की भर्ती कर परियोजना के लिए तय मानव कार्य दिवसों से कम अवधि में ही कार्य पूरा करना और वह भी न्यूनतम मजदूरी से कम राशि का भुगतान कर। रोजगार गारंटी योजना के तहत प्रदेश में चल रही अधिकांश परियोजनाओं की समायवधि को देखें तो यह दो से पांच दिन से ज्यादा नहीं होगी। दूसरी ओर निर्माण क्षेत्र, पत्थर खदानों, रेत, व ईंट के भट्टों आदि में बरसात के महीनों को छोड़कर शेष में पूरे समय काम चलता रहता है।

शेष पृष्ठ 24 पर...

आजाद देश में मिली गुलामी की जिंदगी

मैला ढोने के कार्य में लगी महिलाओं और इनके परिवार वालों की शिक्षा कि स्थिति तो अति पिछड़ी हुई है, ही उनके बच्चों की शिक्षा की स्थिति भी खराब है। समाज में गैर बराबरी, गरीबी, अस्पृश्यता व उपेक्षा के शिकार होने के कारण उनका भविष्य भी अंधकारमय हो जाता है।

■ आशिफ

लोग रोज सुबह भगवान को याद करते है, मंदिर मस्जिद जाते हैं और हमें लोगों के पखाने में से मल निकालने जाना पड़ता है और फिर घर–घर इकठ्ठा कर इस गंदगी को गांव के बाहर गुड़ढे पर फेंकना पड़ता है।'' ये बात करते हुए देवास जिले के टोंककला की रेखा बाई दुखी मन से आगे कहती है कि पता नहीं हमारी ये हालत कब बदलेगी। रेखा बाई भी उन हजारों महिलाओं में से एक है, जो आज भी इस आजाद देश में गुलामी भरी जिन्दगी जिते हुए मैला ढोने जैसे अमानवीय काम में लगी हुई हैं। इस काम में अधिकाधिक दलित समुदाय की वाल्मीकी जाति की महिलाएं लगी हुई हैं। इस काम में लगी महिलाओं को भंगन व मेहतरानी जैसे हीन तथा जातिसूचक शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। इस समुदाय मे मैला ढोने के कार्य की जागीरदारी बंटी होती है एवं अपनी जागीदारी में ही महिलाएं यह काम करती हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि समाज द्वारा किस प्रकार दूसरों का मल उठाने जैसे गंदे काम को करने का भी समुदाय के लोगों के बीच बंटवारा किया गया है और जिसे बहुत ही अच्छा और ऊंचा जागीरदारी नाम दिया गया है। मैला ढोने वाली महिलाएं कहती हैं कि यह कार्य करना हमारी जागीरदारी में है। यह हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा। यह तो हमारी जिम्मेदारी है। मैला ढोने की इस अमानवीय प्रथा में लगी महिलाओं को अक्सर प्रति घर मैला ढोने को प्रतिमाह 5 से 20 रुपये तक मिलता है एवं साथ में बासी रोटी व पुराने कपड़े दिये जाते हैं। जिससे साफ जाहिर होता है किस प्रकार समाज द्वारा मैला ढोने जैसे अमानवीय अथवा अमानुषिक कार्य करने पर भी इस कार्य में लगी महिलाओं को आर्थिक शोषण किया जा रहा है। मैला ढोने का कार्य अत्यंत ही अस्वस्थकर होता है। बहुत ही कम पैसे एवं बासी रोटी व सब्जी मिलने के कारण इस कार्य में लगी महिलाओं को पौष्टिक तो दूर, सामान्य भोजन भी नहीं मिल पाता है तथा दूसरे का मल उठाने जैसा गंदा काम करने के कारण उन्हें तपेदिक, त्वचा रोग, अस्थमा एवं लीवर संबंधी रोगों का शिकार होना पड़ता है। इस कार्य में लगी कई महिलाओं का कहना है कि बरसात के दिनों में उन्हें बासी बेसन व चावल जैसे भोज्य पदार्थ मिलते हैं। उन्हें इन्हें खाने पर उलटियां होती हैं, क्योंकि यह भोज्य पदार्थ उन्हें मल जैसा ही दिखाई देता है। परंतु घर में दूसरा खाने का सामान नहीं होने के कारण उन्हें मजबूरी वश खाना पड़ता है। महिलाएं यह काम अपने माता पिता के यहां नही करती हैं, जब वे शादी के बाद अपने ससुराल आती हैं तो उनकी सास द्वारा अपनी जागीरदारी का यह कार्य उन्हें सौपा जाता है। पहले पहल जब महिलाएं यह कार्य करने जाती है उन्हें बहुत ही गंदा लगता है एवं पीड़ा होती है। देवास की एक महिला का तो कहना था कि जब अपने ससुराल में वह पहली बार यह काम करने गई तो एक घर का ही मैला उठाने पर उसे इतनी पीड़ा हुई कि वह टोकरा वही फेंककर अपनी सास के पास आ गई एवं दो दिनों तक वह खाना भी नहीं खा पा रही थी। परंतु इस काम के विरोध के बावजूद भी उन्हें दबाव में यह काम करना पड़ा और आज वे यह काम कर रही हैं।

मैला ढोने वाली महिलाओं की शिक्षा के साथ सामाजिक स्थिति भी अतिपिछड़ी हुई है। उनकी सामाजिक स्थिति देखने के बाद सामाजिक न्याय और समानता जैसे शब्द हमें बेमानी लगते हैं। मंदिर अथवा पूजा के स्थानों में इन महिलाओं का प्रवेश निषेध है। आम महिलाओं की तरह ही धर्म में आस्था होने के कारण देवास जिले के बागली ब्लाक की एक नगर पंचायत में रहते हुए मैला ढोने के कार्य में संलग्न महिलाओं का कहना है कि उन्हें मंदिर में पूजा व दर्शन की अनुमति नहीं है। इसलिए वे घर को ही मंदिर समझते हुए पूजा कर अपने मन को शांत कर लेती हैं। कई जगहों पर इनके श्मशान भी अलग हैं। छूआछूत के कारण इन्हें अलग स्थानों से पानी भरना पड़ता है। कई स्थानों पर गांवों में साफ पानी के स्रोत होने के बावजूद भी इन्हें गांव के बाहर गंदे पानी के स्रोत से पानी भरना एवं उसी गंदे पानी को पीना पड़ता है। जहां कहीं वे एक ही स्रोत से पानी भरती है, वहां इन्हें सबके बाद पानी भरने दिया जाता है एवं यदि गलती से इनका घड़ा दूसरों के घड़ों से टकरा जाये तो दूसरी महिलाएं अपना घड़ा फोड़ लेती है। इस काम में लगी महिलाओं को गैर दलित लोगों के घर में प्रवेश की अनुमति तो दूर दलित जातियों के लोगों के घर में भी ये महिलाएं प्रवेश नहीं कर सकती हैं। कुछ स्थानों पर होटलों में इन्हें व इनके परिजनों को प्रवेश की अनुमति नहीं है और कुछ स्थान ऐसे हैं, जहां इनके चाय के कप अलग होते हैं। कुछ स्थानों पर नाई भी इनके परिजनों की कटिंग नहीं बनाते। इन्हें दूसरी जाति के लोगों द्वारा साथ भी नहीं बैठाया जाता। शादी अथवा दूसरे कार्यक्रमों में उन्हें जूठन दी जाती है एवं जहां इन्हें बुलाया जाता है, वहां बाद में अलग लाईन में भोजन दिया जाता है। इस समुदाय में शिक्षा का अभाव होने के कारण इन्हें कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी भी नहीं होती है और न ही विभागों एवं कार्यालयो में इनके साथ ठीक व्यवहार किया जाता है। इनके परिवार के सदस्य भी अस्पृश्यता के कारण दुकान व धंधे नहीं ला लगा है। इस प्रकार मैला ढोने की प्रथा में लगी महिलाएं अपने सम्मान को त्यागकर शोषण, अत्याचार, उपेक्षा एव अछूतों की जिंदगी जी रही हैं। पीढ़ियों से गुलामी व शोषण की शिकार इन महिलाओं के लिये आजादी संविधान एवं कानूनों की बात बेमानी है। आज हम चाहें जितनी विकास की बात कर लें, परंतु जब तक समाज का यह सबसे वंचित समुदाय इस दलदल से उबर नहीं पायेगा और इस आजाद देश में गुलामी की जिंदगी से छुटकारा नहीं पायेगा, तब तक विकास का सही मायनों में कोई अर्थ नहीं है।

छुआछूत की आड़ में शोषण की शिकार

पंचायतों में दलितों और खासकर महिलाओं को आरक्षण दिए जाने के बावजूद ऊंचे तबके में छूआछूत की भावना खत्म नहीं हुई है। इसीलिए वे किसी न किसी बहाने से दलित महिलाओं के साथ बदसलूकी करते हैं ....

सौमित्र राय

नाम भंवरी बाई, काम शोषित महिलाओं को न्याय दिलाना। उम्र के इन पांच दशकों में भंवरी बाई ने बहुत कुछ देखा और सहा है। स्कूल में उसे दलित होने के कारण दूसरे बच्चों से अलग बैठना पड़ता था। शादी के बाद ससुराल आई तो गांव के बाहर हैंडपंप से पानी भरने की मजबूरी भी साथ थी। लेकिन वह लड़ी और प्रौढ़ शिक्षा केंद्र की अनुदेशिका बन गई , मगर छूआछूत के खिलाफ संघर्ष की भावना उसमें तब जगी, जब वह उंची जाति के सरकारी हैंडपंप से पानी भरने गई। गुस्साए गांव के यादवों ने उसकी नौ वर्षीय बेटी से बलात्कार किया। भंवरी बाई के सब्र का बांध टूट गया और उसने छूआछूत और जातिवाद के नाम पर दलित महिलाओं के संघर्ष को न्याय के मुकाम तक पहुंचाने का बीड़ा उठा लिया।

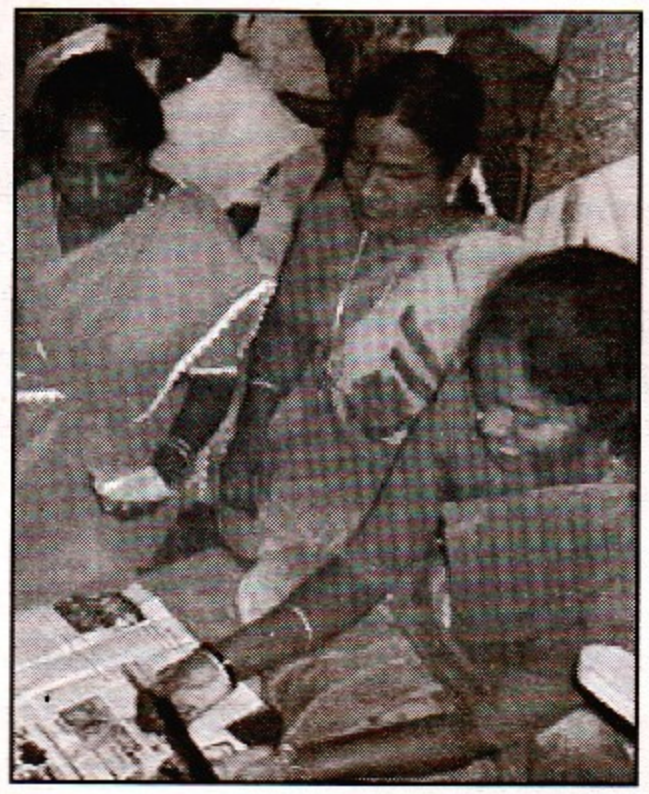

यह कहानी अकेले भंवरी बाई की ही नहीं है। मध्यप्रदेश में ऐसी हजारों भंवरी बाई होगी जो ऊंची जातियों के शोषण को चुपचाप झेलती हैं। हालांकि सामाजिक भेदभाव को रोकने के लिए सरकार ने अस्पृश्यता निवारण कानून 1955 और अनुसूचित जाति, जनजाति (अत्याचार विरोध) अधिनियम 1989 जैसे कानून बनाए हुए है, मगर सदियों पुरानी जाति प्रथा की जड़ें ग्रामीण समाज में इतनी व्यापक हैं, कि अगड़ी जातियां उनका पालन करना तो दूर, छूआछूत की खिलाफत करने वालों की आवाज को ही इतनी सख्ती से कुचलती हैं कि दलितों के दिल में हमेशा के लिए आतंक की गहरी छाप उतर जाती है। वे अगड़ी जातियों के लिए आसान शिकार होती हैं। पंचायतों में दलितों को आरक्षण महिलाओं को आगे लाने के प्रयासों से भी जातिभेद की मूल भावना में कोई खास फर्क नहीं पड़ा है। कभी चरनोई भूमि विवाद और कभी कुएं से पानी भरने या फिर मंदिर में सबके साथ पूजा करने जैसे कारणों को आधार बनाकर महिलाओं के साथ बदसलूकी की जाती है। दलितों पर अत्याचार के ताजातरीन देशव्यापी आंकड़ो को अगर देखें तो हर घंटे दो दलितों को जातिवादी हिंसा का शिकार होना पड़ रहा है। रोजाना तीन दलित महिलाओं के साथ बलात्कार जाता है और दो की हत्या कर दी जाती है। इन घटनाओं की बाढ़ इसलिए नहीं थम पा रही है, क्योंकि कहीं न कहीं प्रशासनिक मशीनरी की मदद भी अगड़ी जातियों को ही मिल रही है और वह भी इसलिए, क्योंकि आय व जीविका के अधिकांश स्त्रोत अब भी उन्हीं के पास हैं।

संपत्ति पर हक के मामले में लिंग भेद

मध्यप्रदेश की महिला कामगारों में से करीब 88 फीसदी हिस्सा खेती और उससे जुड़ी विभिन्न गतिविधियों पर निर्भर है। राज्य सरकार ने अपनी महिला नीति में स्त्रियों को स्वतंत्र किसान के रूप में मान्यता दी गई है, लेकिन जमीन पर मालिकाना हक और कब्जे की दृष्टि से देखे तो हकीकत कुछ और ही नजर आएगी। सरकारी कानून यह कहता है कि पति और पत्नी दोनों के नाम पर जमीन के पट्टे दिए जाने चाहिए साथ ही दोनों की सहमति पर ही जमीन को बेचने का फैसला लिया जा सकता है, पर ज्यादातर मामले अब भी सिर्फ कागजों तक ही समिति हैं।

यहां यह गौरतलब है कि बैंक से लोन आदि लेने में जमीन एक महत्वपूर्ण जमानत के बतौर इस्तेमाल होती है, लेकिन यदि जमीन पर मालिकाना हक ही न हो तो ऋण सुंविधा का लाभ भी महिलाओं को नहीं मिल पाता। इसकी एक प्रमुख वजह यह भी है कि ग्रामीण महिलाओं में से ज्यादातर को यह पता ही नहीं है कि जमीन के पट्टे पति और पत्नी के नाम पर संयुक्त रूप से भी मिलते है।

कमोवेश यही बात चरनोई की जमीन पर भी लागू होती है। ऐसी जमीनों के लिए जो पट्टे महिलाओं को दिए गए हैं, उनसे उनका जीवन स्तर नहीं सुधर पाया है, क्योंकि जमीन ही बंजर है। उस पर गांव के अगड़ी जातियों के लोग जमीन पर कब्जा जमाने के मौके की तलाश में रहते हैं।

दलितों के साथ असहयोग

ग्रामीण समाज में अब भी महिलाओं को दोयम दर्जे की हैसियत से देखा जाता है। ग्रामीण महिलाओं खासतौर पर दलित महिलाओं की आत्मनिर्भरता ऊंचे तबके को फूटी आंख नहीं सुहाती। छूआछूत जैसे पुरातन नियमों की आड़ में दलित महिलाओं के अधिकारों को दबाने की हर मुमकिन कोशिश की जाती है। दलितों की बस्ती गांव से बाहर होना, दलितों के लिए पेयजल व निस्तार के अलग स्त्रोत अगड़ी जातियों के सामने चप्पल न पहनने देना जैंसे कई नियम हैं, जिन्हें अब भी लागू देखा जा सकता है। अनुसूचित जाति बहुल गांवों में पंचायतों के सक्रिय सहयोग से दलितों के साथ भेदभाव को काफी हद तक रोका जा सका है, लेकिन अगड़ी जातियों की बाहुल्यता वाले गांवों में हालत अभी भी खराब है।

छिंदवाड़ा जिले के कटला गांव में एक दलित परिवार का हुक्का –पानी सिर्फ इसलिए बंद कर दिया गया, क्योंकि परिवार की एक लड़की ने अगड़ी जाति के लड़के से प्रेम करने का साहस किया था। गांव में किसी बीमारी का प्रकोप होने अथवा ऊंची जाति के परिवार में किसी की असामाजिक मौत पर किसी विशेष दलित महिला पर टोटका करने का आरोप लगाकर सरेआम उसकी बेइज्जती के प्रकरण आए दिन इसलिए सामने आते रहते हैं, क्योंकि दलितों के कानूनी अधिकारों का अनुपालन ठीक से नहीं हो पा रहा है।

दोहरा अभिशाप झेलती दलित औरतें

अरविन्द जैन

औरत को सेक्स सिंबल मानने जैसी सोच सिर्फ पिछड़े और अशिक्षित तबके में ही नहीं, बल्कि पढ़े लिखे ऊंची खानदान के लोगों की भी है। दलित और अनुसूचित जाति की महिलाओं को सरेआम बेइज्जत करने की घटनाओं पर इसीलिए रोक नहीं लग पा रही है ....

खंडवा जिले में मंडवा गांव में भोल समाज के सम्मेलन में महिलाओं की नीलामी की घटना को समाज के लिए अशुभ संकेत और औरत के अस्तित्व पर आघात मानते हुए, मध्यप्रदेश राज्य महिला आयोग की पूर्व अध्यक्ष डॉ सविता इनामदार ने एक समाचार पत्र में लिखा है – "पन्ना में जब कुटटूबाई सती कर दी जाती है, या इंदौर की संगीता खंते को पुलिस सुरक्षा देने के लिए विवश होना पड़ता है, अथवा बागली की तारा को विर्वस्त्र घुमाया जाता है तो इन सबके पीछे पुरूष प्रधान समाज की एक ही मनोवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है–पति के बगैर स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं। यदि इसकी कोशिश कोई स्त्री करती है तो वह दंड या मौत की अधिकारिणी बनती है। इस प्रकार की घटनाएं कुप्रथाओं की संकेतक हैं। इसके मुख्य कारण हैं– समाज का पिछड़ापन, अशिक्षा और गरीबी। पिछड़ेपन के चलते जाति प्रथा, छुआछूत के साथ ही ऐसे समाज में स्त्री को केवल भोग की वस्तु मानने की खतरनाक मानसिकता, महिला हिंसा और अत्याचार के लिए जिम्मेदार है। ऐसे पिछड़े लोग यह सोच ही नहीं पाते कि स्त्री सेक्स के अलावा भी कुछ और है। स्त्री सेक्स के अलावा मनुष्य है, इसलिए उसके मानव भी अधिकार है।" उपरोक्त लेख छपने के पांच दिन बाद ही एक समाचार पत्र में निर्वस्त्र घुमाई गई दलित महिला ने अपनी दास्तान सुनाई। खंडवा जिले के पछाया गांव की अनुसूचित जाति की महिला और उसकी बेटी को निर्वस्त्र कर गांव में घुमाया गया। उसकी बेटी के साथ गांव के चार युवकों द्वारा सामूहिक बलात्कार किया गया। इस घटना के बारे में जिला कलेक्टर मनु श्रीवास्तव और एसपी अरवेटो सेमा का दावा है कि मां–बेटी ने निर्वस्त्र कर गांव में घुमाए जाने या बलात्कार की शिकायत प्राथमिकी दर्ज कराते समय नहीं की थी। मतलब यह स्त्रियां झूठ बोल रही हैं, जबकि तथ्य चीख–चीखकर कह रहे हैं कि पुलिस झूठ बोल रही हैं।

डॉ इनामदार के अनुसार इस प्रकार की घटनाओं के मुख्य कारण समाज का पिछड़ापन, अशिक्षा और गरीबी है। स्पष्ट है कि लोग गरीबी के कारण अशिक्षित हैं और परिणामस्वरूप पिछड़े भी। सरकार चलाती रहे पढ़ना–बढ़ना आन्दोलन और कहती रहे–हमें जानना चाहिए, समझना चहिए, कि घरों में खेतों–खलिहानों में, बाजारों में हर जगह हैं हमारी हिस्सेदारी, फिर क्यों न अक्षरों की दुनिया में दाखिल हों, बेहतर समझ के लिए, बेहतर कल के लिए। मगर डॉ. इनामदार के शब्दों मे, "ऐसे पिछड़े लोग यह सोच ही नहीं सकते कि स्त्री सेक्स के अलावा भी कुछ और है।" क्या सिर्फ पिछड़े लोग ही ऐसा सोच ही नहीं सकते क्या शिक्षित, सम्पन्न और सवर्ण भी ऐसा ही नहीं सोचते। गरीब, अशिक्षित और पिछड़े, ऐसा नहीं सोच पाते तो कारण समझ में आ सकता है। लेकिन शिक्षित, सम्पन्न और सवर्ण तो सोच समझ सकते हैं। फिर क्या कारण है कि वहां भी स्त्री सेक्स के अलावा कुछ नहीं समझी जाती?स्त्री के विरूद्ध हिंसा या यौन हिंसा में सवर्ण (शिक्षित और सम्पन्न) समाज ही सबसे आगे रहा है। माया त्यागी से लेकर मथुरा और भंवरीबाई तक या रूपकंवर से लेकर नैना साहनी और शालिनी भटनागर कांड तक में मुख्य अभियुक्त कौन है, सवर्ण शिक्षित सम्पन्न और शहरी प्रतिष्ठित वर्ग इस खौफनाक सत्य के बावजूद एक अदालत ने भंवरी बलात्कार कांड मामले में कहा कि सवर्ण दलित महिला के साथ बलात्कार नहीं कर सकते।

डॉ इनामदार जब यह कहती हैं कि स्त्री सेक्स की वस्तु के अलावा भी कुछ और है तो क्या इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री सेक्स की वस्तु तो है ही, पर उसके अलावा भी कुछ और है ? इसी तर्ज पर एक प्रसिद्ध पत्रकार ने अपनी संपादकीय में लिखा है– अश्लीलता सिर्फ औरत के शरीर में ही नहीं होती। यानी अश्लीलता कहीं और भी हो सकती है, मगर औरत के शरीर में तो होती है। यह बहुत सोच–समझकर लिखे शब्द हैं, जिनका अर्थ (अनर्थ) बेहद पारदर्शी ही नहीं, बल्कि अत्यन्त घातक भी है। दरअसल अश्लीलता औरत के शरीर में नहीं, पुरूष के दिमाग या दृष्टि में होती है। पितृसत्तात्मक समाज में अधिकांश पुरूषों को हर खूबसूरत स्त्री एक खूबसूरत दुश्मन और हर स्त्री देह अश्लील नजर आती है, अगर वह उसकी अपनी मां, बहन या बेटी नहीं है। खूबसूरत स्त्री चूंकि दुश्मन है, इसलिए दुश्मन के साथ बलात्कार को अपना परम धर्म मानते हैं। आदमी की निगाह में औरत सेक्स के अलावा और कुछ भी नहीं। शायद इसीलिए कहा गया है कि स्त्री मुक्ति का असली मुद्दा सेक्स मुक्ति है, क्योंकि अन्ततः सेक्स मुक्ति सवर्ण, शिक्षित और सम्पन्न समाज के पुरूषों के ही हित में जाती है। हम यह कैसे भूल जाते हैं कि शिक्षित और सम्पन्न (सवर्ण) वर्ग के लोगों ने ही गरीब, अनपढ़ और पिछड़े समाज का सबसे अधिक शोषण और उत्पीड़न किया है और कर रहे हैं।

डॉ इनामदार स्त्रियों के "आर्थिक सशक्तिकरण" और स्त्रियों से सम्बन्धित कानूनों में परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहती हैं कि न्याय भी शीघ्र मिल सके, यह सुनिश्चित करना आवश्यक है, ताकि स्त्री के खिलाफ हिंसा और अत्याचार के प्रकरणों में कमी आ सके। मगर सवाल यह है कि आर्थिक सरलीकरण, कानूनों में परिवर्तन और शीघ्रतम न्याय को सुनिश्चित कौन करेगा? कब करेगा? कैसे करेगा? और क्यों करेगा? सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सत्ता पर तो अभी सवर्ण पुरूषों का ही वर्चस्व है। वे यह सब क्यों करेंगे? राज्य महिला आयोग समेत राष्ट्रीय महिला आयोग में पदासीन सुशिक्षित और सजग महिला प्रतिनिधियों की पहल के बिना यह सब सम्भव नहीं। क्या महिला आयोग के पास राष्ट्रीय स्तर पर बदलाव लाने सम्बन्धी ऐसी कोई सम्पूर्ण या विस्तृत परियोजना है?अगर अब तक नहीं भी बन पाई, तो क्या निकट भविष्य में कोई संभावना है।

संगिनी की गतिविधियाँ

लिंगभेद पर हुआ भ्रांतियों का समाधान

जेंडर संवेदीकरण कार्यशाला

महिलाओं के साथ हिंसा और यौन उत्पीड़न के पीछे सबसे प्रमुख कारण लिंगभेद है और इसे दूर करने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को एकजुट होकर समाज के संकीर्ण नजरिए को बदलना होगा।

इसी मकसद से संगिनी ने सात से 11 जून 2004 को मध्यप्रदेश के स्थानीय समूहों के कार्यकर्ताओं की एक जेंडर संवेदीकरण कार्यशाला आयोजित की। यह कार्यशाला इसी मकसद को लेकर पिछले साल हुई कार्यशाला का दूसरा चरण था, जिसमे महिलाओं के साथ लिंग भेद को लेकर समाज में फैली कई भ्रंतियों को दूर किया गया। भोपाल के क्षेत्रीय ग्रामीण विकास प्रशिक्षण संस्थान में हुई इस कार्यशाला में स्वयंसेवी संस्थाओं के करीब 23 प्रतिनिधियों को स्त्री व पुरूष की लिंग आधारित सामाजिक भूमिका को समझने के तरीके बताए गए। कार्यशाला में प्रतिभागियों ने लिंग आधारित श्रम के बंटवारें महिलओं के लिए बेहतर अवसर खोजने संसाधनों पर नियंत्रण व महिला सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में किए जा रहे प्रयासों को समझा। संगिनी की इस पांच दिवसीय कार्यशाला में प्रतिभागियों ने विभिन्न सत्रों के माध्यम से महिला हिंसा और जेंडर के बीच अंर्तसंबंध को समझा और अपने कौशल को बढ़ाया। जागोरी संस्था दिल्ली से आई रूनु घोष इस अवसर पर रिसोर्स पर्सन के रूप में मौजूद थी।

कानून के साथ अधिकारों की बात

महिलाएं घरेलू हिंसा और सामाजिक शोषण का विरोध इसलिए नहीं कर पाती, क्योंकि उन्हें अपने कानूनी अधिकारों की कोई जानकारी नहीं होती। स्वयंसेवी संस्थाएं इस मामले में महिलाओं की जागरूकता को बढ़ाकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। लेकिन वे यह काम तभी कर सकती हैं, जब महिलाओं से जुड़े कानूनी पहलुओं की स्वयं उन्हें भी ठीक से जानकारी हो।

महिला एवं कानून मुद्दे पर संगिनी की 27 से 29 जुलाई 2004 को हुई तीन दिवसीय कार्यशाला को उद्देश्य भी यही था कि महिला मुद्दे की पैरवी करने वाली संस्थाओं के प्रतिनिधि खुद भी महिला कानून को समझें। भोपाल के आईकफ आश्रम में हुई इस तीन दिसवीय कार्यशाला ह्यूमन राईट ला नेटवर्क दिल्ली से आई सुश्री विनम्रता और रितिक (दोनो विधि विशेषज्ञ) की टीम ने बतौर रिसोर्स पर्सन भाग लिया। कार्यशाला मे पहले दिन कानून क्या हैं, दीवानी व फौजदारी मामलों, हिन्दू विवाह एकट और हिन्दू संपत्ति कानून जैसे पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गई।

दूसरे दिन घरेलू हिंसा, बलात्कार व कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न से जुड़े कानूनी पहलुओं और इनके खिलाफ महिलाओं के अधिकारों को बताया गया। तीसरे दिन हबीबगंज थाना भोपाल से आए सब इंस्पेक्टर आर.एन. शर्मा व हवलदार जे.एस. परिहार की मौजूदगी में पुलिस एवं महिलाओं के कानूनी अधिकारों पर विस्तार से चर्चा की गई। साथ ही लिंग परीक्षण, मुस्लिम विवाह अधिनियम व मजदूरी एक्ट के बारे में भी बताया गया। बाद में प्रतिभागियों ने पुलिस थाने का दौरा कर वहां की गतिविधियों को देख और समझा।

क्षेत्रीय प्रशिक्षण कार्यशालाएं

इंदौर में महिला हिंसा के खिलाफ समाज में जागरूकता फैलाने और लिंग भेद के विरूद्ध सकारात्मक वातावरण निर्मित करने के उद्देश्य से क्षेत्रीय जेंडर संवेदीकरण कार्यशालाओं का पहला चरण 11 और 12 सितंबर 2004 को इंदौर में संपन्न हुआ। इस कार्यशाला में विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल हुए, जिन्होंने इस मुद्दे पर पहले आयोजित की गई कार्यशाला में हिस्सा लिया था और अपनी समझ को काफी हद तक विकसित कर लिया था। इसलिए कार्यशाला में विषयवस्तु को समझाने की तकनीक को थोड़ा उन्नत रखा गया, ताकि प्रतिभागियों की कार्यकुशलता को और बढ़ाया जा सकें। जेंडर संवेदीकरण कार्यशाला का अगला चरण 23–24 सितंबर 2004 को सतना में आयोजित किया गया, जिसमें बडी संख्या में स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल हुए। क्षेत्रीय जेंडर उन्मुखीकरण प्रशिक्षण कार्यशाला (सतना व इंदौर) संगिनी ने सतना 23–24 सितंबर और इंदौर 11–12 सितंबर की स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं के साथ जेंडर संवेदीकरण पर के दौरान पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला का प्रमुख उद्देश्य निम्नवत था –

- महिला हिंसा के विभिन्न पहलुओं को पहचानना, उन पर चर्चा कर, आज के संदर्भ में समाधान के विकल्प को ढूंढना था।
- महिला हिंसा के विरूद्ध सकारात्मक वातावरण निर्मित करना था असमानता के विरूद्ध समानता पर आधारित समाज की कल्पना को साकार करने का प्रयास करना।

यह इसी मुद्दे पर पहले आयोजित की गई कार्यशाला के मुकाबले विषय वस्तु व तकनीक के मायने मे थोडी उन्नत थी। ऐसा इसलिए, क्योंकि जेंडर संवेदीकरण के मुद्दे पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं की समझ विषय के साथ विकसित हुई थी। जरूरत थी तो उनकी कार्यकुशलता को बढ़ाकर प्रयासों को थोड़ा गति देने की, जिसमें इस कार्यशाला से काफी मदद मिली। कार्यशाला में संदर्भ व्यक्ति के रूप में जागोरी संस्था (दिल्ली) को आमंत्रित किया गया था। कार्यशाला में विभिन्न संस्थाओं से आए करीब 30 कार्यकर्ता शामिल हुए।

आने वाले दिनों में ...

कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न घरेलू हिंसा व लिंगभेद से जुड़े मुद्दों पर महिलाओं की जागरूकता को बढ़ाने के मकसद से संगिनी ने दो नए अभियानों को शुरू करने का फैसला किया है।

मुमकिन है अभियान

इस अखिल भारतीय कार्यक्रम के तहत मध्यप्रदेश के 24 जिलों में संगिनी जेंडर रिसोर्स सेंटर भोपाल के नेतृत्व में 25 नवंबर से 4 दिसम्बर तक संचालित पखवाडे का राज्यस्तरीय अभियान संचालित किया जाएगा। इसमें पोस्टर प्रदर्शनी, पत्रकार वार्ताओं, संगोष्ठियों कार्यशालाओं और जिलो में जत्था यात्राओं के जरिए समाज के सभी वर्गो में निचले स्तर तक जागरूकता फैलाना इसका मकसद है। इस अभियान की राज्य स्तरीय शुरुआत 17 और 18 दिसंबर 2004 को सीडा दिवस पर आयोजित किए जाएगा। इसमें घरेलू हिंसा की रोकथाम के लिए सभी मुमकिन रास्तों के प्रति युवाओं की जागरूकता को बढ़ाने के साथ उन्हें इन पर चलने के लिए प्रेरित भी किया जाएगा।

कॉमन इंडिया कैम्पेन : खामोशी तोड़ो अभियान

महिला हिंसा विरोधी दिवस पर एक पखवाड़े तक इस अभियान के तहत प्रेस कॉन्फ्रेन्स, आम सभा, रैली, संगोष्ठी आदि के जरिए महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा और विस्थापन, साम्प्रदायिकता के खतरे और पंचायत व जातिगत हिंसा के खिलाफ जागरूकता अभियान चलाया जायेगा।

संदर्भ प्रशिक्षण

संगिनी ने एक संदर्भ केंद्र के रूप में अपने क्षेत्र की ख्यातिप्राप्त व कुशल संस्थाओं के सहयोग से रिसोर्स ट्रेनिंग का काम भी शुरू किया है। इसके तहत, संयुक्त राष्ट्र औधोगिक विकास संस्थान के सहयोग से जेंडर प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है।

कार्यशाला में औधोगिक क्षेत्र में कार्यरत ऐसे असंगठित क्षेत्र की श्रमिक महिलाओं के साथ किसी भी तरह के उत्पीड़न को रोकने के उपायों पर चर्चा की गई, ताकि वे भमयुक्त वातावरण में सुरक्षित रूप से व स्वस्थ माहौल में काम कर सकें।

इसके अलावा राज्य हंगर प्रोजेक्ट के साथ पंचायतों में महिलाओं के साथ लिंग आधारित साथ पंचायतों में महिलाओं के साथ लिंग आधारित भेदभाव के मुद्दों पर भी संवेदीकरण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। दोनो कार्यक्रमों में सहयोगी संस्थाओं के रिसोर्स पर्सन के अलावा सहयोगी संस्थाओं के कार्यकर्ता भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। कार्यकर्ताओं के बीच काफी प्रशंसनीय प्रयास रहा है इस न्यूजलेटर के लिए संगिनी का एक विशेषज्ञ संपादिकीय मंडल भी है, जिसमें शामिल सदस्य न्यूजलेटर की योजना बनाने से लेकर आलेखों की संपादन तक में अपनी सलाह देते हैं।

धर्म, जाति वर्ग से परे भारतीय संविधान सभी को बराबरी के नजरिए से देखता है। चाहे वे सवर्ण हों या दलित, पुरूष हो या महिला, सभी को उन्नति के बराबर अवसर मिले हैं। तो क्यों न इन कानूनों को जानकर मौकों का लाभ उठाएं ...

शुभ्रा पचौरी

संविधान और दलित अधिकार

चाहे मैला ढोने की प्रथा हो या जातिगत आधार पर मंदिर में प्रवेश की मनाही, या फिर जातिगत आधार पर सामाजिक बहिष्कार। भारतीय संविधान द्वारा इस प्रकार क भेदभाव को दण्डनीय अपराध माना है।

भारत का संविधान समानता और न्याय के आदर्शो पर बना हैं। समानता और न्याय की स्थापना का प्रयास राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में किया गया है। हमारा संविधान धर्म, मूलवंश, जाति या जन्म स्थान के आधार पर व्यक्तिगत के किसी वर्ग में भेदभाव का विरोध करता है। इसी प्रकार मात्र महिला, आदिवासी, दलित होने के कारण या किसी स्थान विशेष पर जन्म लेने के कारण या मात्र किसी धर्म विशेष को मानने के कारण भेदभाव करने की मनाही संविधान द्वारा की गई है।

हमारे संविधान निर्माताओं ने उक्त उपबंधों को मूर्त रूप देने के लिये देश के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिये समुचित उपबंध किये हैं, क्योंकि वे जानते थे कि इन वर्गो के उत्थान के बगैर राष्ट्र का विकास संभव नहीं।

प्रजातांत्रिक समानता के आदर्श केवल तभी साकार हो सकते हैं, जबकि देश के समस्त वर्गों को एक स्तर पर लाया जाए। इसीलिए हमारे संविधान में दलित, आदिवासी और देश के पिछड़े वर्गों एवं अल्पसंख्यकों को देश के अन्य वर्गो के स्तर पर लाने के लिये कुछ अस्थाई प्रावधान हैं ताकि देश के विकास में इनका भी बराबर का योगदान हो।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 46 राज्य की जनता की बेहतरी, विशेषतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों को शैक्षणिक तथा आर्थिक उन्नति करने का निर्देश देता है। इसके साथ ही सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण का निर्देश भी राज्य को इस अनुच्छेद द्वारा दिया गया है।

संविधान के भाग तीन में प्रदत्त मूल अधिकारों में भी समाज के उपेक्षित वर्ग और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण के लिये अनेक उपबंध है। अनुच्छेद 14 भारत के प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण की गारंटी देता है। अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश पर राज्य द्वारा भेदभाव करने का प्रतिषेध करता है। इस अनुच्छेद की कोई भी बात राज्य को सामाजिक और शिक्षात्मक दृष्टि से पिछड़े हुये वर्गों या अनुसूचित जातियों, या अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिये विशेष उपबंध करने में बाधक न होगी, अर्थात राज्य अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के हित व उन्नति के लिये इस अनुच्छेद के तहत विशेष प्रावधान कर सकता है।

इसी प्रकार अनुच्छेद 16 सरकारी नौकरियों के लिये अवसर की समानता की गारन्टी करता है और इसके संबंध में धर्म मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास के आधार पर भेदभाव को वर्जित करता है। इस अनुच्छेद में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि यदि महिलाओं तथा अनुसूचित जाति, या अनुसूचित जनजाति या सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो को यदि सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिलने पर राज्य उक्त वर्गो के व्यक्तियों, महिला एवं पुरूष के लिये नियुक्तियों या पदों पर आरक्षण का प्रावधान कर सकता है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का उन्मूलन करता है जो भारतीय समाज का एक महान कलंक था। यह उस अनुच्छेद अस्पृश्यता

(छुआछूत) को न सिर्फ समाप्त करता है, वरन् उसका किसी भी रूप में पालन करने का निषेध करता है। यह अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी अयोग्यता को लागू करने को दण्डनीय अपराध घोषित करता है। इस प्रकार हमारा संविधान भारतीय समाज में परापंरा से चले आ रहे इस महान कलंक को समाप्त करने की ही घोषणा ही नहीं करता, वरन् भविष्य में इसके किसी भी रूप में पालन करने को भी मना करता है।

अनुच्छेद 17 और अनुच्छेद 85 के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग में संसद ने अस्श्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955 पारित किया था। यह कानून अस्पृश्यता (छूआछूत) के लिये दण्ड की व्यवस्था करता है। इसके अनुसार अस्पृश्यता का अपराध करने वालों को अधिकतम 500 रूपये जुर्माना या 6 माह की सजा या दोनों सजायें साथ–साथ दी जा सकती हैं। वर्ष 1967 में संसद द्वारा संशोधन के पश्चात इस कानून का नाम बदलकर सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 कर दिया गया है। इस कानून के अधीन लोक सेवक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस कानून के तहत दण्डनीय अपराधों की जांच करे और समुचित कार्यवाही करे। यदि कोई लोक सेवक इस कानून के अधीन किये गये अपराधों की जांच करने में जानबूझकर उपेक्षा करता है तो यह माना जायेगा कि वह ऐसे अपराध को बढ़ावा दे रहा है।

यह बहुत आश्चर्यजनक बात है कि सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 एवं संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता की कोई परिभाषा नही दी गई है। किन्तु मैसूर उच्च न्यायालय ने अपने (देवरानी द्वारा पद्मन्ना 172 ए.आई. आर 1958 मैसूर 84) एक निर्णय में अस्पृश्यता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि अस्पृश्यता शब्द का शाब्दिक अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए। शाब्दिक अर्थ में व्यक्तियों को कई कारणों से अस्पश्य माना जा सकता है :– जैसे जन्म, रोग, मृत्यु एवं अन्य कारणों से उत्पन्न अस्पृश्यता। अस्पृश्यता का अर्थ उन सामाजिक कुरीतियों से समझना चाहिए जो भारत वर्ष में जाति प्रथा के सन्दर्भ में परम्परा से विकसित हुई हैं।

वे कौन सी जातियां हैं, या वे कौन से व्यक्ति हैं, जो अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी मे सम्मिलित होगें, इसकी संविधान में कोई परिभाषा नहीं दी गई है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति में कौन सी जातियां शमिल होगीं, इस संबंध में लोक अधिसूचना जारी करने की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 341 एवं 342 के तहत राष्ट्रपति में निहित है।

संविधान द्वारा उपबंधित है कि निर्वाचन क्षेत्रों में भी अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिये स्थान आरक्षित किये जायेंगे तथा अनुच्छेद 325 में उपबंधित है कि निर्वाचन के लिये एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी नामावली में शामिल किये जाने के लिये अपात्र नहीं होगा।

संविधान के अनुच्छेद 330 एवं 332 में लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिये स्थान आरक्षित किये जाने का उपबंध किया गया है तथा 73 वां संविधान संशोधन अनुच्छेद 243 (घ) के तहत पंचायत क्षेत्र की जनसंख्या के आधार पर प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थान आरक्षित रहेंगे। इन आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई स्थान अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की स्त्रियों के लिये आरक्षित रहेंगे। इसके अलावा प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में न्यूनतम एक तिहाई स्थान स्त्रियों के लिये आरक्षित रहेंगे। चक्रानुक्रम से एक पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में स्थान आरक्षित किये जायेंगे। इनमें अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की स्त्रियों के लिये आरक्षित स्थानों की संख्या सम्मिलित है।

इस प्रकार 73वां संशोधन अधिनियम अनुच्छेद 243 के जरिए नगरपालिकाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों और

अनुच्छेद 17 और अनुच्छेद 85 के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग में संसद ने अस्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955 पारित किया था। यह कानून अस्पृश्यता (छूआछूत) के लिये दण्ड की व्यवस्था करता है। इसके अनुसार अस्पृश्यता का अपराध करने वालों को अधिकतम 500 रूपये जुर्माना या 6 माह की सजा या दोनों सजायें साथ–साथ दी जा सकती हैं। वर्ष 1967 में संसद द्वारा संशोधन के पश्चात इस कानून का नाम बदलकर सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 कर दिया गया है।

स्त्रियों के लिये आरक्षण का उपबंध करता है। अनु. जाति एवं जनजातियों के हित में संविधान के अनु. 335 में संशोधन किया गया है। अनुच्छेद 335 अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए नौकरी में आरक्षण का उपबंध करता है। संशोधन पश्चात उपबंधित किया गया है कि अनुच्छेद की कोई भी बात राज्य को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के हित में ऐसे प्रावधान करने से नहीं रोकेगा, जो संघ या राज्य से संबंधित किसी नौकरी, सेवा या पदों पर पदोन्नति के संबंध में आरक्षित है।

अनुच्छेद 338 में संशोधन पश्चात अनुसूचित जातियों के एवं अनुसूचित जनजातियों के उत्थान, सुरक्षा, कल्याण एवं विकास के लिये केन्द्र एवं राज्यों में अनुसूचित जाति–जनजाति आयोग की स्थापना का उपबंध किया गया है तथा अनुच्छेद 275 में केन्द्र राज्यों को अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिये अनुदान प्रदान करने के सम्बन्ध में उपबंध किया गया है।

इस प्रकार भारत का संविधान न सिर्फ जाति प्रथा से उपजी सामाजिक बुराई का निवारण करता है। वरन् दलितों को समाज के अन्य वर्गो के समान स्थान दिलाकर प्रजातांत्रिक समानता के आदर्श की स्थापना करता है।

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं स्त्रियों के विकास एवं जनभागीदारी से ही वास्तविक लोकतंत्र की प्राप्ति संभव है।

इंटरव्यू

दलितों को सामाजिक आंदोलन का सपोर्ट चाहिए

मध्यप्रदेश के एक बड़े भू–भाग में काबिज दलितों, खासतौर पर महिलाओं को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ रही है। उनकी आवाज ज्यादा बुलंद नहीं हो पाती , क्योंकि उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल की तरह मध्यप्रदेश में दलित महिलाओं को अपने उत्थान के प्रयासों में किसी समानांतर सामाजिक आंदोलन का साथ नहीं मिल पा रहा है। यह मानना है डिबेट संस्था के श्री अमिताभ सिंह का, जिन्होंने एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रदेश की जातिगत असमानता को लंबे अर्से तक करीब से देखा, समझा और महसूस किया है। यही कारण है कि संगिनी ने दलितों से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर उनसे विस्तृत चर्चा की ...

दलितों को आर्थिक, सामाजिक समानता के विशेष प्रयासों के बीच दलित महिलाओं की स्थिति को आप किस तरह आंकते हैं?

- वस्तुत : दलितों की लड़ाई अब सामंतवादी शोषक वर्ग के खिलाफ नहीं, बल्कि मेरे हिसाब से दबंग जातियों से है। पहले यह कहा जाता था कि ऊंची जाति के सामंती वर्ग ही दलितों को समानता नहीं देना चाहते। बदलते आर्थिक परिवेश और शक्ति संतुलन के बीच हालात तेजी से बदले हैं। इसलिए दलित संघर्ष को और व्यापक स्वरूप में देखने के लिए उसे दबंग जातियों के खिलाफ संघर्ष कहना ज्यादा प्रासंगिक होगा। जहां तक दलित महिलाओं की स्थिति का सवाल है तो बुंदेलखंड, ग्वालियर, चंबल के इलाके में जातिगत शोषण ज्यादा नजर आता है। दलित महिलाओं पर काम का बोझ भी ज्यादा है। दबंग जातियां तो उनसे ज्यादा काम लेती ही हैं, घर चलाने के लिए भी उन्हें ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है, क्योंकि पति शराब में पैसे उड़ाते हैं। एक तरह से परिवार की आर्थिक धुरी बन गई हैं दलित महिलाएं।

दलितों को विकास के समान अधिकार दिलाने के प्रयास बड़े लंबे अर्से से चल रहे हैं। क्या जमीनी स्तर पर आपको इनके नतीजे दिखाई देते हैं?

- हां, लेकिन बहुत व्यापक नहीं, क्योंकि परिवार की आय के एक बड़े हिस्से को पूरा करने के कारण आर्थिक ताकत दलित महिलाओं के पास ज्यादा है। यही कारण है कि दलित महिलाएं सामाजिक भेदभाव के मामले में ज्यादा मुखर हैं। उनमें नेतृत्व क्षमता व्यापक है, लेकिन परिवार की पुरूष प्रधान व्यवस्था और दबंग जातियों, दोनों के विरोध का सामना करना पड़ता है। दलित पुरूष अपनी सामाजिक जातिगत व्यवस्था को सहज स्वीकार कर लेते हैं, पर महिलाएं अक्सर मौका मिलते ही भेदभाव का विरोध करती हैं। टीकमगढ़ की गोदियां बाई ने जब झंडा फहराने की कोशिश की, तो उसका दबंग जातियों ने जमकर विरोध किया। बाद में मुख्यमंत्री के हस्तक्षेप से गोंदिया बाई की जिद पूरी हो सकी। दलित महिलाओं को विरोध का सामना तब करना पड़ता है, जब वे दबंग जातियों के वर्चस्व को चुनौती देती हैं। पंचायती राज व्यवस्था के जरिए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रयासों के बावजूद दलित महिला प्रतिनिधियों को दबंग जातियों के विरोध को सामना करना पड़ रहा है। किसी दबंग जाति वाले के खेत में अगर कोई दलित महिला भेदभाव के खिलाफ अपना विरोध जताए तो उसे उतना बुरा नहीं माना जाता , पर यदि कोई दलित पंच अगर अपने मोहल्ले में निर्माण कार्य करने की जिद करे तो वह गांव की इज्जत का सवाल बन जाता है और विरोध के स्वर बुलंद होने लगते हैं।

आर्थिक ताकत दलित महिलाओं के पास ज्यादा है। यही कारण है कि दलित महिलाएं सामाजिक भेदभाव के मामले में ज्यादा मुखर हैं। उनमें नेतृत्व क्षमता व्यापक है, लेकिन परिवार की पुरूष प्रधान व्यवस्था और दबंग जातियों, दोनों के विरोध का सामना करना पड़ता है। दलित पुरूष अपनी सामाजिक जातिगत व्यवस्था को सहज स्वीकार कर लेते हैं, पर महिलाएं अक्सर मौका मिलते ही भेदभाव का विरोध करती हैं।

इतना सब होने के बावजूद मध्यप्रदेश में कोई दलित चेतना आंदोलन क्यों नहीं उभर पा रहा है, जैसा कि उत्तरप्रदेश में बसपा के अस्तित्व में आने के बाद हुआ?

- क्योंकि राजनीतिक दल स्वयं नहीं चाहते कि दलित चेतना का कोई आंदोलन उभरे और सत्ता की ताकत

पंचायतें कोई सामाजिक बदलाव नहीं कर रहीं। बदलाव तभी होगा, जब दलितों के समर्थन में एक समानांतर सामाजिक आंदोलन चले। अभी स्थिति यह है कि यदि कोई दलित महिला प्रतिनिधि पंचायती राज के माध्यम से विकास, उत्थान या समानता की बात करती है तो दबंग जातियां उसके जरि़ पर लांक्षन लगाती हैं, उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाए जाते हैं, भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं। पंचायतों के जरिए दलित महिलाओं की नेतृत्व क्षमता जरूर उभर रही है, मगर हकीकत में जमीनी स्तर पर बदलाव नहीं दिखता।

जातियों का वर्चस्व हो चला है, जो दलितों को आगे नहीं आने देना चाहती। कांग्रेस भी चाहती है कि दलितों का आंदोलन न हो, पर दलित वोट बराबर मिलते रहें।

दलित महिलाओं के उत्थान में पंचायतें किस कदर सहायक हो रही हैं?

- पंचायतें कोई सामाजिक बदलाव नहीं कर रहीं। बदलाव तभी होगा, जब दलितों के समर्थन में एक समानांतर सामाजिक आंदोलन चले। अभी स्थिति यह है कि यदि कोई दलित महिला प्रतिनिधि पंचायती राज के माध्यम से विकास, उत्थान या समानता की बात करती है तो दबंग जातियां उसके चरित्र पर लांक्षन लगाती हैं, उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाए जाते हैं, भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं। पंचायतों के जरिए दलित महिलाओं की नेतृत्व क्षमता जरूर उभर रही है, मगर हकीकत में जमीनी स्तर पर बदलाव नहीं दिखता। बरखेड़ी गांव में आज कोई दलित महिला बसंतीबाई की तरह अपने उपर बदनामी मोल नहीं लेना चाहती। सरकार के दलित एजेंडा में भूमि वितरण के तहत जमीन के पुराने कब्जों को ही पट्टों के माध्यम से नियमित किया गया और उसमें भी कोई धांधलियां हुईं। उत्तरप्रदेश में तो चकबंदी से निकली जमीन दलितों को मिली, पर मध्यप्रदेश में जमीन का पुनर्विन्यास ही नहीं मिला। सरकार भी कोई झगड़ा (दबंग जातियों से) मोल लेना नहीं चाहती थी, लिहाजा करीब 90 फीसदी मामलों में पहले से काबिज लोगों को ही जमीन के पट्टे मिले। आज शिक्षा के अधिकार भी पंचायतों के पास हैं, लेकिन न तो दलित अध्यापकों के पास दबंग जातियों के बच्चे पढ़ना चाहते हैं और न ही अध्यापक स्वयं दलित उत्थान के समर्थक हैं। दबंग जातियों के बच्चे दलितों के साथ मध्यान्ह भोजन भी नहीं करते। दलित बच्चों के साथ स्कूल में भेदभाव होता है तो वे शिक्षा में खास दिलचस्पी भला क्यों लेंगे।

काफी प्रयासों के बावजूद दलित महिलाओं पर अत्याचार के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। इन पर कैसे रोक लगेगी?

- असल में इनसे निपटने के लिए दलित समाज की अपनी कोई रणनीति ही नहीं है। शहरीकरण तेजी से बढ़ रहा है, बाजारोन्मुखी विकासवाद ने दलित महिलाओं की हसरतों को भी बढ़ाया है। वे चाहती हैं कि उनके बच्चे पढ़े, गांव में सार्वजनिक हैंडपंप से सबके साथ उन्हें पानी लेने दिया जाए, जातिगत भेदभाव खत्म हो, विकास का बराबर मौका मिले। यही बात जब वे पंचायत में सबके सामने कहती हैं तो उन्हें शोषण, उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। सरकार चाहे तो इस पर सख्ती से रोक लगा सकती है, पर इसके लिए मजबूत इच्छाशक्ति जरूरी है।

जानिए अपने अधिकार

अनुसूचित जाति-जनजाति निवारण अधिनियम 1989

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम) 1989 का मकसद क्या है ?

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों पर किए जाने वाले अपराधों को रोकना और
- ऐसे अपराधों से पीड़ित को राहत देना तथा उनके पुनर्वास का बन्दोबस्त करना।

इस अधिनियम के तहत अभियुक्त कौन है।

- कोई भी व्यक्ति जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का न हो और वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति के साथ इस अधिनियम में दिया गया कोई अपराध करें तो वह अभियुक्त है।

अधिनियम के तहत पीड़ित व्यक्ति कौन है और अपराध क्या–क्या है ?

पीड़ित व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का वह सदस्य है जिसके साथ नीचे दिए गए अपराधों में से कोई भी अपराध किए गए हों :

- उसे कोई ऐसा पदार्थ खाने या पीने के लिए मजबूर किया गया हो जो अपमानकारी हो या खाने लायक न हो
- उसके घर या पड़ोस मे मलबा या कूड़ा जाम करके उसे तंग करना या उसका अपमान किया गया हो,
- उसे नंगा करके या चेहरे या शरीर पर रंग पोतकर घुमाया गया हो
- उसे गलत तरीके से उसकी अपनी जमीन पर खेती करने के हक से वंचित किया गया हो
- उसकी किसी जमीन परिसर या पानी पर अपने अधिकारों से वंचित किया गया हो
- उसे कम मजदूरी या मजदूरी न देकर काम करने या बंधुआ मजदूर के रूप में काम करने के लिए मजबूर किया गया हो
- उसे अपना वोट देने या अपनी इच्छा के मुताबिक वोट देने के अधिकार का प्रयोग करने से रोका गया हो
- उस पर झूठी कानूनी कार्रवाई की गई हो।
- किसी कर्मचारी को दी गई गलत सूचना के आधार पर उसे हानि पहुंचाई गई हो या उसे तंग किया गया हो
- उसे आम लोगों के सामने जानबूझकर अपमानित किया गया या नीचा दिखाया गया हो।
- कोई महिला जिसके साथ उसकी लज्जा– भंग करने के उद्देश्य से उस पर अपराधिक हमला किया गया हो
- उसे स्वच्छ पेयजल के अधिकार से वंचित किया गया हो
- उसे किसी सार्वजानिक स्थान पर जाने के अधिकार से वंचित किया गया हो
- उसे अपना घर या गांव छोड़ने के लिए मजबूर किया गया हो
- उसे किसी आपराधिक मामले में फंसाया गया हो जिसकी वजह से उसे कैद या फांसी हो सकती हो
- उसके घर या पूजा के किसी स्थान को जलाकर उसे जानबूझकर हानि पहुंचाई गई हो

अनुसूचित जाति–जनजाति के लोगों के अधिकारों का समुचित संरक्षण करने और उन्हें कानून के दायरे में न्याय दिलाने के मकसद से बना है अनुसूचित जाति–जनजाति कानून 1989, जिसका उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को सख्त सजा का प्रावधान है। इस कानून में दलितों को शोषण व अत्याचार से निजात दिलाने कई अधिकार दिए गए हैं .....

- उसे किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा हानि पहुंचाई गई हो या किसी अन्य अपराध में फसाया गया हो।

क्या अधिनियम के अधीन अपराध संज्ञेय (Cognizable) है।

अधिनियम में दिए गए सभी अपराध संज्ञेय है। पुलिस अपराधी को वारंट के बगैर गिरफ्तार कर सकती है और न्यायालय से इजाजत लिए बगैर मामले की जांच कर सकती है।

यदि कोई सरकारी कर्मचारी जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का न हो जानबूझकर अधिनियम में दिए गए अपने कर्त्तव्यों को अनदेखा करता है तो उसे कम से कम 6 माह तक कैद हो सकती है।

इस अधिनियम के तहत शिकायत कौन दाखिल कर सकता है?

कोई भी व्यक्ति जो यह जानता हो कि अधिनियम के तहत अपराध किया गया है, शिकायत दाखिल कर सकता है। यह जरूरी नहीं कि केवल अपराध का शिकार हुआ व्यक्ति

ही शिकायत दाखिल करें।

आपको अपनी शिकायत में क्या बताना चाहिए ?

- अपना नाम और पता
- अपराधी का नाम और पता

जब अपराध किए जाने के बारे में सूचना जुबानी तौर पर दी जाए तो पुलिस को इसे अवश्य लिखना चाहिए।

कृपया जोर दें कि पुलिस द्वारा दर्ज की गई सूचना अपको पढ़कर सुनाई जाए।

पुलिस द्वारा सूचना दर्ज कर लिए जाने के बाद उस पर सूचना देने वाले व्यक्ति को हस्ताक्षर अवश्यक करने चाहिए।

आप रिपोर्ट की नकल मुफ्त प्राप्त करने के हकदार है।

- अपराध की तारीख, समय और स्थान
- घटना में शामिल लोगो के नाम और हुलिया
- अपराध के वास्ताविक तथ्य सच्ची बातें
- गवाहों के नाम और पते, और
- कोई दूसरे संगत ब्यौरे

अधिनियम के तहत शिकायत दाखिल करने का तरीका क्या है ?

- जब अपराध किए जाने के बारे में सूचना जुबानी तौर पर दी जाए तो पुलिस को इसे अवश्य लिखना चाहिए।
- कृपया जोर दें कि पुलिस द्वारा दर्ज की गई सूचना आपको पढ़कर सुनाई जाए।
- पुलिस द्वारा सूचना दर्ज कर लिए जाने के बाद उस पर सूचना देने वाले व्यक्ति को हस्ताक्षर अवश्यक करने चाहिए
- रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने से पहले इस बात की जांच कर लें कि पुलिस द्वारा दर्ज की गई सूचना आपके द्वारा दिए गए ब्यौरों के मुताबिक है।
- आप रिपोर्ट की नकल मुफ्त प्राप्त करने के हकदार है।

यदि अधिनियम के तहत कोई अपराध किया जाता है तो आपको क्या करना चाहिए ?

- आपको ऐसी घटना की सूचना तुरंत ही सबसे नजदीकी पुलिस थाने को देनी चाहिए

अधिनियम के तहत अपराध की जांच कौन कर सकता है और जांच पूरी करने की समय सीमा क्या है।

- अधिनियम के तहत अपराध की जांच कोई ऐसा पुलिस अफसर कर सकता है जिसका ओहदा उप पुलिस अधीक्षक से कम न हो।
- जांच अधिकारी को यह जांच उच्च प्राथमिकता के आधार पर तीस दिन के अन्दर पूरी करनी होती है।

यदि आपकी शिकायत दर्ज नहीं की जाती तो आप क्या कर सकते है ?

- यदि पुलिस स्टेशन के कर्मचारी आपकी शिकायत दर्ज नहीं करते तो आप उसे जिला पुलिस अधीक्षक को भेज सकते है जो इसकी जांच करवाएंगे।
- यदि आप पुलिस द्वारा आपकी शिकायत पर की गई कार्रवाई से संतुष्ट न हों, तो आप क्या कर सकते है ?
- आपको सबसे पहले जिला पुलिस अधीक्षक को लिखना चाहिए।

क्या अधिनियम के तहत मुआवजे के लिए कोई प्रावधान है ?

- यदि आप अधिनियम के तहत किसी अत्याचार से पीड़ित है, तो आप नियमों के अधीन राहत और अन्य सुविधाएं पाने के हकदार है। मुआवजे की रकम अलग–अलग मामलों में 20,000 रु से लेकर 2,00,000 रुपए के बीच हो सकती है अधिक जानकारी और अपने दावों को निपटाने के लिए आप जिला न्यायाधीश या जिला समाज कल्याण अधिकारी से सम्पर्क कर सकते है।
- अगर आप प्राप्त राशि से संतुष्ट नही हैं तो विशेष न्यायाधीश को सूचित करें।
- इसके अतिरिक्त चिकित्सा खर्च भी प्राप्त कर सकते है।

यदि आप अपने सरकारी वकील को बदलना चाहते हैं तो जिला न्यायाधीश को पत्र लिखें।

साभार सोपान, सिवनी

क्या कहती है महिला नीति

- भूमि पर महिलाओं का बराबर हिस्सा।
- भू अभिलेखों में महिला का नाम भू–स्वामी की हैसियत से लिखा जाएगा।
- पति की मृत्यु होने पर जमीन का हक पत्नी को।
- ग्रामीण निर्धन महिलाओं को जमीन के आवंटन में प्राथमिकता।
- गांव की सार्वजानिक जमीन बुजुर्ग महिलाओं के नियंत्रण में होगी।
- पटवारियों की भर्ती में महिलाओं को 30 फीसदी आरक्षण का फायदा।

दलित हितों का संरक्षक पीसा कानून

दलित आदिवासियों को जल, जंगल और जमीन से बेदखल करने और उन्हें पंचायतों के जरिए समान अधिकार दिलाने के मकसद से बना है पीसा कानून। मगर अफसोस की बात यह है कि इसके बारे में न तो सरकारी अफसर कुछ जानते हैं और न ही दलित आदिवासी। इसीलिए यह कानून अब तक अमल में नही लाया जा सका है।

सौमित्र राय

कौन कहता है कि मध्यप्रदेश के दलित आदिवासी साधनों के मामले में गरीब हैं। राज्य के कुल खनिज भंडार का 80 प्रतिशत अनुसूचित जाति बहुल इलाकों में मौजूद है। इसी हिस्से में 70 प्रतिशत जंगल और 80 प्रतिशत जल संसाधन आते हैं। लेकिन सच्चाई यही है कि मध्यप्रदेश के दलित आदिवासी आर्थिक रूप से गरीब हैं। इसलिए क्योंकि उनका वास्तविक हक कोई और प्राप्त कर रहा है। दलितों को उनके अधिकारों से वंचित करने के लिए उत्पीड़न का सहारा लिया जाता है। पुलिस व सरकारी एजेंसियों की लापरवाही और पक्षपातपूर्ण रवैया भी इस मामलें में कई बार शोषक वर्ग के लिए सहायक बनता रहा है। खदानों, वनोपज, प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त आय का ज्यादातर हिस्सा निजी क्षेत्र को चला जाता है, अनुसूचित बहुल इलाकों के लोगों को उसका 10 फीसदी हिस्सा भी नहीं मिलता।

ऐसी कई असमानताएं हैं, जिन्हें दूर करने के लिए पंचायत विस्तार अधिनियम (पीसा) 1996 को पारित कया गया। ग्राम स्वराज कानून के तहत अब जबकि पंचायत की ग्राम सभा को संवैधानिक रूप से एक स्वायत्तशासी निकाय का कर्जा दिया गया है, राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों को भी इसके दायरे में शामिल करने का प्रावधान ही पंचायत विस्तार अधिनियम के रूप में लागू किया गया है। अफसोस सिर्फ इस बात का है कि इस कानून को लागू हुए आठ साल से ज्यादा समय हो चुका है, मगर इसके बावजूद न तो सरकारी अधिकारी इसके बारे में जानते हैं और न ही दलित आदिवासी। यह कानून कई मामलों में दलित हितों की संरक्षक है, इसलिए पहल यह जानना जरूरी है कि पीसा कानून किस तरह से दलित आदिवासियों को बराबरी का हक दिलवाने और उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाकर शोषण व अन्याय से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकता है।

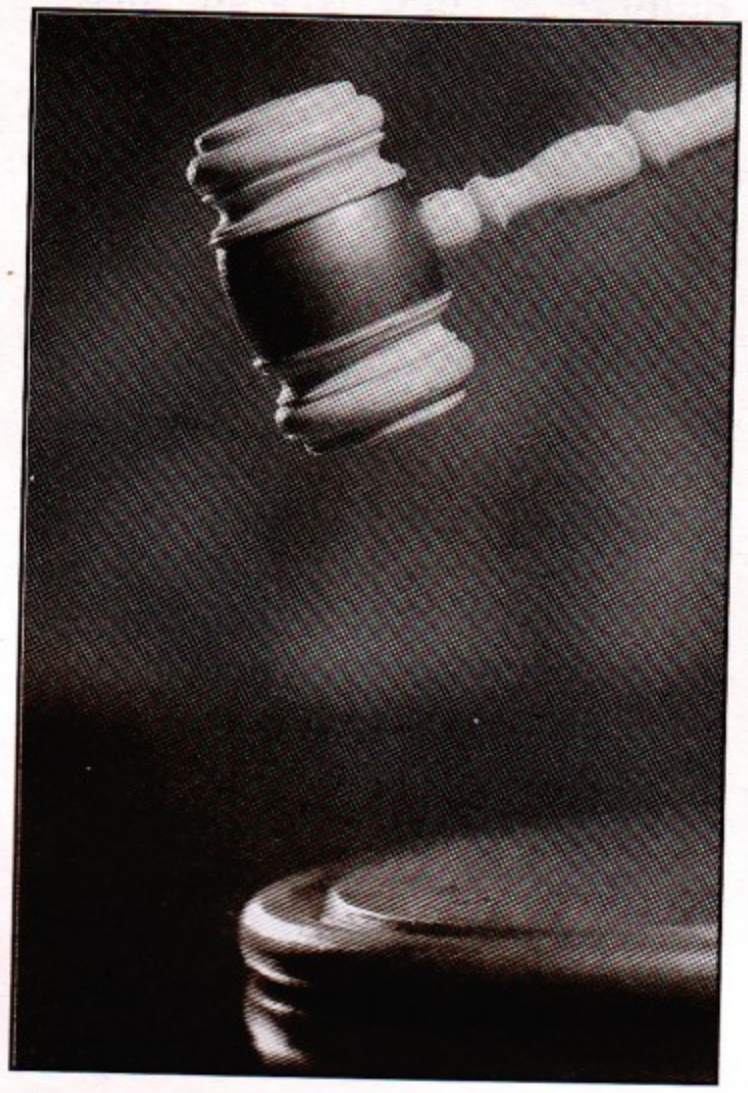

पीसा एक्ट के प्रावधान

मध्यप्रदेश के कुछ इलाकों में दलित आदिवासियों के हितों को संरक्षण प्रदान करने के लिए उन्हें पांचवी अनुसूची में रखा गया है, जिसे अनुसूचित क्षेत्र कहा जाता है। पीसा कानून इन्हीं क्षेत्रों में पंचायती राज्य एक्ट का विस्तार है। यह विस्तार इसलिए है, क्योंकि दलित आदिवासी बहुल क्षेत्रों में सामाजिक, सांस्कृतिक व भौगोलिक परिस्थितियों से बाकी के सामान्य क्षेत्रों से अलग हैं और ऐसे में ग्राम स्वराज की परिकल्पना को मूल रूप से लागू करने स्वायत्तशासी बनाना जरूरी है।

पीसा एक्ट की मुख्य बातें –

- गांव के अंदर जल, जंगल और जमीन की मालिक ग्राम सभा होगी।
- पंचायत द्वारा तैयार की गई योजनाओं कार्यक्रमों और परियोजनाओं की स्वीकृत भी ग्राम सभा ही देगी।
- राज्य के दलित आदिवासी बहुत इलाकों में सरपंच की बजाय गैर सरपंच ग्राम सभा की अध्यक्षता करेगा और ग्राम सभा की बैठक में कोरम भी कुल सदस्य संख्या के आधे की जगह 1/5 माना जाएगा।
- पीसा कानून के माध्यम से ग्राम सभा के जरिए ग्रामीण समुदाय को अपनी बेहतरी के बारे में सोचने और संसाधनों पर नियंत्रण का कानूनी अधिकार।
- पीसा कानून के तहत ग्राम सभा से पूछे व स्वीकृति लिए बिना गांव के किसी प्राकृतिक संसाधन (खदान, जल संसाधन या वनोपज आदि) का पट्टा किसी भी निजी कंपनी को नहीं दिया जा सकता। यहां तक कि सरकार भी इसे मानने के लिए बाध्य है।
- यदि राज्य का कोई कानून अनुसूचित क्षेत्र की परंपराओं के खिलाफ हो तो उसे ग्राम सभा पीसा कानून के तहत रद्द करने या बदलने का हक रखती है।
- ग्राम सभा चाहे तो किसी दलित आदिवासी महिला के साथ बलात्कार करने वाले पर 50 हजार रुपए का जुर्माना ठोक सकती है।
- अनुसूचित क्षेत्र में गौण खनिजों और लघु वनोपज पर पूरा नियंत्रण ग्राम सभा का ही होगा और वही उनका प्रबंधन भी करेगी।
- गांव में शराब बंदी लागू करने और किसी विशेष मादक पदार्थ की बिक्री पर रोक लगाने या न लगाने के बारे में फैसला लेने का हक भी ग्राम सभा को ही होगा।

- अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम स्वराज अधिनियम के तहत पुलिस महकमे को छोड़कर करीब 28 शासकीय विभागों का अमला पंचायतों का दिया गया है, जो ग्राम सभा के निर्देशों का पालन करेंगी। इसे पंचायत सेक्टर कहा जाता है।
- मध्यप्रदेश साहूकारी अधिनियम को बदला गया है।
- पंचायत द्वारा संपन्न किए जा रहे कार्यों का उपयोगिता प्रमाण पत्र भी ग्राम सभा ही जारी करेगी। जिसके बाद शासन से प्राप्त पैसे की दूसरी किश्त जारी की जा सकती है।
- इसके अलावा कर्ज पर नियंत्रण, ग्रामीण बाजार का प्रबंधन, जमीन के नामांतरण व विवादों के निपटारे का हक भी ग्राम सभा को ही दिया गया है।

पीसा कानून हकीकत में अनुसूचित क्षेत्र में दलित आदिवासियों को स्वशासन का अधिकार देता है। मगर शायद सरकारी अफसरों को अपने हाथ से अधिकारों का यू छिन जाना पसंद नहीं और यही कारण है कि इस कानून को पूरी तरह अमल में लाए जाने पर रूकावटें खड़ी की जाती हैं। मिसाल के तौर पर मध्यप्रदेश शासन द्वारा कुछ समय पहले लाया गया जिला सरकार कानून पीसा एक्ट के खिलाफ है। इसी तरह ग्राम सभा को लघु वनोपजों पर नियंत्रण के अधिकार तो दिए गए, पर फारेस्ट एक्ट नहीं बदला गया। नतीजतन जंगल में सूखी लकड़ियां, कंद मूल बटोरने एवं जानवरों को चराने जाने वाली दलित आदिवासी महिलाओं के साथ वन विभाग के कर्मचारी मारपीट करते हैं। यहीं बात जमीनों के नामांतरण अधिकारों पर भी लागू होती है।

अंतर्विरोध :

पीसा कानून हकीकत में अनुसूचित क्षेत्र में दलित आदिवासियों को स्वशासन का अधिकार देता है। मगर शायद सरकारी अफसरों को अपने हाथ से अधिकारों का यू छिन जाना पसंद नहीं और यही कारण है कि इस कानून को पूरी तरह अमल में लाए जाने पर रूकावटें खड़ी की जाती हैं। मिसाल के तौर पर मध्यप्रदेश शासन द्वारा कुछ समय पहले लाया गया जिला सरकार कानून पीसा एक्ट के खिलाफ है। इसी तरह ग्राम सभा को लघु वनोपजों पर नियंत्रण के अधिकार तो दिए गए, पर फारेस्ट एक्ट नहीं बदला गया। नतीजतन जंगल में सूखी लकड़ियां, कंद मूल बटोरने एवं जानवरों को चराने जाने वाली दलित आदिवासी महिलाओं के साथ वन विभाग के कर्मचारी मारपीट करते हैं। यहीं बात जमीनों के नामांतरण अधिकारों पर भी लागू होती है। नामांतरण के अधिकार ग्राम सभा को तो दिए गए हैं पर जमीन अधिग्रहण के बारे में 1894 में बना (अंग्रेजों के जमाने का) कानून अब तक नही बदला गया है। पीसा कानून के मुताबिक जमीन के विवाद का निर्धारण ग्राम सभा ही करेगी। वह अनुविभागीय अधिकारी को निर्देश जारी कर सकती है, जिस पर उप दंडाधिकारी को अमल करना होगा।

संविधान में राज्य विधानसभा को जो दर्जा प्राप्त है, वही ग्राम सभा को भी हासिल है। सरकार केवल परीवीक्षण का काम कर सकती है, योजना बनाने और उन पर अनुपालन का अधिकार सिर्फ ग्राम सभा को ही प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय ने 1996 में जारी आदेश में कहा है कि जहां पेड़ लगें हैं, वही जंगल है और इसी आधार पर दलितों को वन भूमि से हटाकर बेदखल करने की कार्रवाई बेधड़क की जा रही है, जबकि इस बारे में फैसला लेने का अधिकार केवल ग्राम सभा को है। यहां तक कि निजी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इशारे पर अभ्यारण्यों से भी सुनियोजित तरीके से दलितों को बेदखल किया जा रहा है, जबकि वास्तविकता यह है कि जंगल और आदिवासी एक–दूसरे के पूरक है। इसी तरह दलितों को जंगल के क्षेत्र से हटाने के लिए जंगली फल–पौधों का रोपण धीरे–धीरे बंद किया जा रहा है, ताकि आदिवासियों को जंगलों से कोई फायदा न मिल सकें। बैतूल के आसपास के जंगलों में आदिवासी–दलितों के भोजन–स्त्रोत अब न के बराबर रह गए हैं।

स्पष्ट है कि सरकार स्वयं नहीं चाहती कि दलित आदिवासियों को उनका वास्तविक हक मिले ये विसंगतियां तभी दूर होगी, जब गांव के दलित अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए खुद आगे आएं और सरकार पर समानता के अधिकार प्रदान करने का दबाव डालें।

छुआछूत खत्म होने तक लड़ूंगी : लाली बाई

■ जीत लेंगे अंधेरे को : पुस्तक से साभार

मेरा जन्म राजस्थान के बेगु गांव में हुआ। जब कुछ समझ पैदा हुई तो मालूम पड़ गया था कि हम गरीब है और जात से तो एकदम गरीब है। मैं भंगी जाति मै पैदा हुई हूं, जिसे इंसानों की गिनती में नहीं रखा जाता। बेगु में पिताजी मजदूरी करते थे। वार त्यौहार पर मां घरों से खाना मांग लाती थी। जब पिताजी को मजदूरी की कमी में बार–बार घर बैठना पड़ा तो हालात बिगड़ने लगे। आखिर हम पांच भाई– बहनों समेत सात जनों को घर चलाना और वो भी आधे समय मांगी हुई रोटियों से यह संभव नही था। पिताजी को हमारा पेट पालने के लिये हमें गांव में ही छोड़कर नीमच आना पड़ा। वहां उन्हें भैंसा गाडी पर पूरे शहर का कचरा इकट्ठा करके शहर के बाहर फेंकने का काम मिला। इस काम के बदले उन्हें 50 रूपये महीना मिलता था। इस पर भी गृहस्थी की गाड़ी नही चली और हम कर्जदार हो गये। पिताजी को वापिस गांव आना पड़ा।

यहां फिर दो वक्त की रोटी के जुगाड़ में कर्ज लेने का सिलसिला शुरू हुआ। मां और पिताजी दोनों मजबूरी पर जाते थ। बांस के टोकरे भी बनाते थे। लेकिन गरीबी की मार हम पर भारी पड़ रही थी। जिन लोगों से अनाज और पैसा उधार लिया था, वे आये दिन घोड़े पर बैठकर घर आते, पिताजी के साथ गाली गलौज करते और मारने की धमकी भी देते थे। हारकर एक बार फिर पिताजी हमकों छोडकर गांव से चले गये, पता नहीं कहां। उस वक्त मेरा भाई स्कूल जाता था। वहां उसे उंची जाति के दूसरे लड़के बैठने नहीं देते थे। बच्चे कई बार मारपीट करते और हमेशा जाति सूचक गालियां ही देते। जब पिताजी ने गांव छोड़ दिया, तो गांव वालों की हिम्मत और बढ़ गई। अब उन्होंने मेरी मां को भी परेशान करना शुरू कर दिया। कुछ दिनों बाद स्कूल में मेरे भाई को कुछ लड़कों ने मिलकर बुरी तरह मारा। गिरते–पड़ते जब वह घर आया, तो लहलुहान हो रहा था। उसके मुंह से भी खून निकल रहा था। स्कूल में हुई इस घटना की शिकायत लेकर जब मेरी मां मास्टरजी के घर गई तो उसकी पत्नी ने उल्टे मेरी मां को लकड़ी से पीटा। इस घटना के दो दिन बाद मेरा भाई चल बसा।

जीवन की यह पहली घटना थी, जब डर और आतंक को मैंने जाना। इसके बाद कई–कई दिन तक मैं डरी रही। उस रात घर में हम दो बहनें, छोटा भाई, मातम मनाती हुई मां और बड़े भाई की लाश के अलावा पास कोई न था। पिताजी उन दिनों कहां थे मुझे पता नहीं। दूसरे दिन सुबह किस्मत से मेरी बुआ अपने गांव से आ गई, तो मेरी मां को एक कंधा नसीब हुआ। जिस पर सिर टिकाकर वो रात भर की भरी आंखों को खाली कर सके। मेरी बुआ की हिम्मत और गांव के ही एक दो भले मानसों की सहायता से हम अपने भाई का मृत शरीर बुआ के गांव गादौला प्रतापगढ़ के पास ले आए। वहीं उसका अंतिम संस्कार किया। शायद तीन चार दिन बाद पिताजी को मालूम पड़ा और वे आये। फिर हमने वह गांव हमेशा के लिये छोड़ दिया और गौदाला के पास के गांव पिलु में रहने लगे।

धीरे–धीरे सब सामान्य होता गया । इस गांव में पिताजी ने मरे पशुओं को उठाने का काम चालू कर दिया था। मैं भी अपनी मां के साथ गांव के घरों के बाहर साफ–सफाई का काम करने लगी। लेकिन हमने मैला उठाने का काम नहीं किया था। इस गांव में नीची जाति के लोग भी हमसे छुआ–छूत करते थे। मेरे साथ भील और चर्मकार समाज की लड़कियां खेलती थीं। बीच में जब ठाकुरों की लड़कियों आ जाती तो हमें भंगी कह कर खेल से बाहर कर देती थी। मां के साथ कुएं पर पानी लेने जाती । पर हमारा कुएं के नजदीक जाना मना था दूसरी कोई औरत कुएं से काफी दूर रखे हमारे बर्तनों में ऊंचे से पानी डाल देती थी। गांव की नदी पर भी नहाने के लिये हमारी जाति का स्थान नियत था। हमें नदी के काफी आगे जाकर नहाने और कपड़े धोने का काम करना पड़ता था।

12 बरस की उमर में मेरी शादी मध्यप्रदेश के मन्दसौर जिले के धारियाखेड़ी में कर दी गई। शादी के एक साल बाद ही गौना हो गया। दुल्हन के रूप में जब पहली बार धारियाखेड़ी गांव की सीमा पर कदम रखा, तो मेरी दादी सास ने मुझे अपने पांव की चप्पल खोल कर

अपने हाथ लेने का कहा। मुझे लगा कि यह कोई टोटका होगा। लेकिन जब साथ की सभी औरतों ने अपने–अपने चप्पल उतार कर हाथ में ले लिये, तो मुझे समझ में नहीं आया। बाद में पता चला कि ये ठाकुरों का गांव है और ऐसे कई सारे नियम हमें मानने पड़ेंगे। उस समय मन में आया था कि ऐसा क्यों? शादी के बाद जिस घर में हम रहते थे वो बड़ा परिवार था। इसमें मेरे दादा ससुर, दादी उनके पांच बेटे, उनकी पत्नियां , ऐसे कुल 25 जनों का परिवार था।

उस समय मेरे सास–ससुर मैला ढोने के काम में लगे हुए थे। काम के बदले जो रोटियां मिलती उससे एक वक्त सबका पेट आराम से भर जाता था। हमारा घर गांव की दूसरी जातियों की बस्ती से नजदीक ही था। इस नजदीकी से बहुत सारे लोगों की दिक्कत होती। उनके बच्चे छू जाने के डर से हमारे घर की तरफ नहीं आते थे। हमें भी बहुत ज्यादा सावधान रहना पड़ता कि हमारी गलती से किसी का धर्म भ्रष्ट न हो जाए। आखिर हमें दूसरी जगह गांव से दूर स्कूल के पीछे मिली। जो पंचायत की जमीन थी। चार–पांच झोपड़ियां बना कर हमारा परिवार वहां रहने लगा। अब सास के साथ–साथ मैं भी काम पर जाने लगी। उस समय मेरी सास 20–22 घरों का मैला साफ करती थी। मैं उन घरों से काम के बदले मिलने वाली रोटियां इकट्ठी करती । तब मुझे सास के साथ जाने पर भी नफरत होती। जब वो काम करती तो उन्हें देखकर मेरा दम घुटता था।

जिस दिन शादी हो कर आई थी, उसी दिन तय कर लिया था कि ये गंदा काम मैं नहीं करूंगी। फिर भी विवश होकर कई बार सास के नहीं जाने पर, मुझे मैला उठाने के काम पर जाना पड़ता। उस समय नाम से मेरी पहचान नहीं थी। सभी मुझे भंगिया की बहू के नाम से बुलाते थे। इस काम से नफरत होने के बावजूद भी यह काम करने के कारण मैं बहुत बीमार रहने लगी थी। जब थोड़ी ठीक होती तो दादी सास जबरदस्ती काम पर भेजती। सास भी मैला भरने के टोकरे से मारती थी। कभी पति से शिकायत करती तो पति मेरी सार्वजानिक पूजा उतारता। रोज–रोज घर में इसी बात पर झगड़ा होता कि मैं इस काम से नफरत क्यों करती हूं। कुछ दिनों बाद तो मैने तय कर लिया कि मैं मजदूरी कर लूंगी लेकिन ये गंदा काम नहीं करूंगी।

मैला उठाने के काम की हमारी बारी महीने में कुल 15 दिन ही रहती थी। बाद के 15 दिन ये काम हमारा दूसरा परिवार करता था। इस वजह से मैला उठाने के काम के साथ–साथ मेरे ससुर को गांव के पशु भी चराने पड़ते। ताकि घर का गुजर–बसर आसानी से हो सकें। तब मेरे ससुर को एक जानवर के पचास पैसे रोज के मिलते थे। मेरे पति गांव के पास स्लेट पेंसिल पत्थर की खदान में मजदूरी के लिये जाते थे। धीरे–धीरे मैं भी खदानों में जाने लगी। उस समय दिनभर काम करने के बदले मुझे 3 रुपये रोज मिलते थे। शुरू–शुरू में जब पत्थरों की भरी हुई वजनदार तगारी नहीं उठती तो ठेकेदार के डर से मेरा आदमी सबके सामने मुझे थप्पड़ मार देता नहीं था। बारिश के समय दिनभर गीले कपड़ों में तरबतर काम करती। मजदूरी मिलती कभी एक, तो कभी दो रुपये जब ज्यादा बारिश हो जाती और पत्थरों की खदानों में पानी भर जाता तो वहां काम मिलना बंद हो जाता । तब हमारी मुश्किलें और बढ़ जाती थी। बारिश के समय में मैला सर पर रखते तो टोकरे की गंदगी पानी में बहकर हमारे मुंह पर आ जाती थी। गांव का दस्तूर यह था कि उस वक्त हम साड़ी भी नहीं पहन सकते थे। बस एक ब्लाऊज और लहंगा, यही हमारी पोशाक थी। लुगड़ा भी ओढ़ सकती थी, लेकिन ऊंची जाति वालों के दबाव के चलते साड़ी हमारे लिये प्रतिबंधित थी। अगर बारिश में भीग गये तो बदलने के लिये दूसरी जोड़ी कपड़े हमारे पास नहीं थे। बारिश में गांव की बस्ती से होकर कहीं जाना हो तो चप्पल हाथ में उठाकर गांव के बाहर तक जाना होता था। रास्ते में दूर कोई ठाकुर या ठाकुराइन आती दिखती, तो सिर नीचे करके मुंह पलट कर तब तक चुपचाप खड़े रहना पड़ता , जब तक कि वो निकल नहीं जाते। नवरात्रि में भी जब गांव में माताजी की स्थापना होती और गरबा होता तो हम भंगियों को दूर ही खड़ा रहना पड़ता । यदि कोई भूल हो जाती तो गांव के ठाकुर लोग

जिस दिन शादी हो कर आई थी, उसी दिन तय कर लिया था कि ये गंदा काम मैं नहीं करूंगी। फिर भी विवश होकर कई बार सास के नहीं जाने पर, मुझे मैला उठाने के काम पर जाना पड़ता। उस समय नाम से मेरी पहचान नहीं थी। सभी मुझे भंगिया की बहू के नाम से बुलाते थे। इस काम से नफरत होने के बावजूद भी यह काम करने के कारण मैं बहुत बीमार रहने लगी थी। जब थोड़ी ठीक होती तो दादी सास जबरदस्ती काम पर भेजती।

हमारे आदमियों को गाली देते । फिर घर आकर हमारे आदमी हमें पीटते थे। मेरे ससुर तो हमेशा एक ही बात कहते, कि इस लाली की वजह से ठाकुर साहब हमें गांव से बाहर निकाल देंगे।

धीर–धीरे दबे स्वर में मैंने ठाकुरों की इन ज्यादतियों का विरोध करना शुरू कर दिया। एक दिन मैं खुद चप्पल पहनकर गांव में गई तो इस पर गांव के एक बुजुर्ग ठाकुर ने मेरे पति के साथ बदतमीजी की। मैं दूसरे दिन उसके घर के सामने जाकर खूब चिल्लाई और गालियां दीं। इस दिन से मेरी हिम्मत कुछ बढ़ी। अभी तक मैला उठाने के बदले हमारे समुदाय की महिलाओं को केवल रोटी ही मिलती थी। एक दिन समुदाय की एक महिला ने रोटी के साथ हर महीने पांच रुपये भी लेने की बात कही। मैंने उसका समर्थन किया। लेकिन यह काम करने वाली अन्य औरतें डर की वजह से यह बात नहीं कह पाई। हमने काम के बदले पैसे लेने की प्रथा शुरू की। उस वक्त जब कांग्रेस की सरकार आई थी तो मेरे ससुर को सरकार के अधिकार अभियान में जमीन का पट्टा मिला था। लेकिन सरकार ने पट्टे की जो जमीन मेरे सुसर को दी थी, उस पर पहले से ही गांव के ठाकुर ने अतिक्रमण कर रखा था। कई महीनों तक हमारे घर के किसी मर्द की हिम्मत उस जमीन पर पांव रखने की नहीं हुई।

शेष पृष्ठ 24 पर...

पृष्ठ 8 का शेष...

घर से बेघर...

संपत्ति पर हक के मामले में लिंग भेद

मध्यप्रदेश की महिला कामगारों में से करीब 88 फीसदी हिस्सा खेती और उससे जुड़ी विभिन्न गतिविधियों पर निर्भर है। सरकारी कानून यह कहता है कि पति और पत्नी दोनों के नाम पर जमीन के पट्टे दिए जाने चाहिए, साथ ही दोनों की सहमति पर ही जमीन को बेचने का फैसला लिया जा सकता है, पर ज्यादातर मामले अब भी सिर्फ कागजों तक ही सीमित हैं। यदि जमीन पर मालिकाना हक ही न हो तो ऋण सुविधा का लाभ भी महिलाओं को नहीं मिल पाता। इसकी एक प्रमुख वजह यह भी है कि ग्रामीण महिलाओं में से ज्यादातर को यह पता ही नहीं है कि जमीन के पट्टे पति और पत्नी दोनों के नाम पर संयुक्त रूप से भी मिलते है।

दलितों के साथ असहयोग

दलित महिलाओं की आत्मनिर्भरता ऊंचे तबके को फूटी आंख नहीं सुहाती। छूआछूत जैसे पुरातन नियमों की आड़ में दलित महिलाओं के अधिकारों को दबाने की हर मुमकिन कोशिश की जाती है।

अनुसूचित जाति बहुल गांवों में पंचायतों के सक्रिय सहयोग से दलितों के साथ भेदभाव को काफी हद तक रोका जा सका है, लेकिन अगड़ी जातियों की बाहुल्यता वाले गांवों में हालत अभी भी खराब है। छिंदवाड़ा जिले के कटला गांव में एक दलित परिवार का हुक्का–पानी सिर्फ इसलिए बंद कर दिया गया, क्योंकि परिवार की एक लड़की ने अगड़ी जाति के लड़के से प्रेम करने का साहस किया था। गांव में किसी बीमारी का प्रकोप होने अथवा ऊंची जाति के परिवार में किसी की असामयिक मौत पर किसी विशेष दलित महिला पर टोटका करने का आरोप लगाकर सरेआम, उसकी बेइज्जती के प्रकरण आए दिन इसलिए सामने आते रहते हैं, क्योंकि दलितों के कानूनी अधिकारों का अनुपालन ठीक से नहीं हो पा रहा है।

पृष्ठ 7 का शेष...

जातिवादी मानसिकता से लड़ाई बड़ी चुनौती

पहला ये कि सभी दलितों तक आरक्षण का लाभ समान रूप से नहीं पहुंचता और दूसरा ये कि दलित पुरूषों के मुकाबले दलित महिला तक आरक्षण का लाभ बराबरी से नहीं पंहुच पाता। केवल जातीय संकीर्णता और भ्रष्टाचार की वजह से शहरों महानगरों में कई शासकीय कॉलेज में आरक्षित सीट और पद भरे ही नहीं जाते।

वास्तविकता तो ये भी है कि यादि कोई पढ़ी लिखी योग्य दलित महिला किसी आरक्षित पद या सीट के लिए आवेदन करती है तो उसे कहा जाता है कि एससी एसंटी बनकर आवेदन करें। यानी कुल मिलाकर कहे कि जातिवादी सोच की भयावहता ने ग्रामीण दलित महिलाओं को छोड़ा है और नहीं शहरी शिक्षित दलित महिलाओं को ऐसा नही है कि हमारे चुने प्रतिनिधी नही जानते है कि सवर्ण और पिछड़ों में अंतर करने का क्या औचित्य है या ऐसा भी नहीं है कि पिछड़ी दलित–आदिवासी महिलाओं के लिए क्या करना है, लेकिन वो करना ही नहीं चाहते। राजनैतिक इच्छाशक्ति की कमी और इसी सामंती सकीर्ण सोच में पले बढ़े होने की वजह से खुद उनकी मानसिकता में परिवर्ततन बेहद जरूरी है। जाति वर्ग और लैंगिक सअमानता की तिहरी मार खा रही दलित महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में बदलाव क लिए उनकी पहुंच शिक्षा और दूसरे अवसरो तक बेहद जरूरी है। उनकी मुक्ति सिर्फ राजनैतिक आर्थिक संदर्भो में ही नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक मुक्ति भी उनके खाते में लानी होगी। स्वाभाविक है कि संदियों से चली आ रही इस जड़ मानसिकता को तोड़ने में प्रगतिशली जन आंदोलनों को ही अपनी भूमिका और विकल्प तलाशने होंगे। चुनौती कठिन है लेकिन ऐसा भी नहीं कि असंभव है।

पृष्ठ 23 का शेष...

छुआछूत खत्म होने तक लड़ूंगी : लाली बाई

उस दौरान मैं अपने पति के साथ स्लेट पेंसिल की खदान पर मजदूरी करने जाती थी। बहुत दिनों बाद वहां के ठेकेदार को जब मैंने अपने ससुर को मिले पट्टे की बात बताई, तो उसने पूरा साथ देने की बात कही। जब मैं खेत में कब्जा करने के लिये अपने पति और देवर के साथ पहुंची तो वो ठाकुर हमें मारंने आया। लेकिन खदान के ठेकेदार के हमारी तरफ होने की वजह से उस दिन बात ज्यादा आगे नहीं बढ़ी और विरोध के बावजूद हमने अपनी जमीन पर ट्रैक्टर चलवाया । इसके बाद भी ठाकुर आए दिन झगड़ा करने के बहाने ढूंढ़ते रहे। कई बार हमारा रास्ता बंद कर देते। तो कभी हमारे खेत में अपने जानवर छोड़कर , हमारी खड़ी फसल को नष्ट करवा देते।

इसी दौरान जिस खदान पर मेरे पति मजदूरी करने जाते थे, वहां एक दिन खनिज विभाग और पुलिस ने छापा डाला। तब मुझे पता चला कि मेरे पति जिस खदान पर काम कर रहे हैं वह अवैध हैं। छापे के वक्त ठेकेदार तो भाग गया, बाकी मजदूर भी इधर–उधर हो गये । लेकिन मेरे पति पकड़ में आ गये उन्होंने मेरे पति को डण्डे से मारा। शाम को जब मैं अपने पति को लेकर ठेकेदार के यहां गई तो ठेकेदार ने मेरे पति को साथ ले जाकर अनुसूचितजाति/जनजाति थाने में अधिकारी के खिलाफ रिपोर्ट लिखा दी। जब तक केस पुलिस थाने में से कोर्ट में जाता उन साहब का तबादला हो गया। कुछ तारीखों तक तो वे बार–बार मंदसौर आते रहे। लेकिन तारीखों से बचने के लिये उन्होने एक ठाकुर के मार्फत समझौते का प्रस्ताव रखा और खर्चे के बतौर 15 हजार रुपये देने की पेशकश की। जब यह बात ठेकेदार को मालूम चली तो ठेकेदार भड़क गया। उसने धमकी दी कि यदि तुमने समझौता किया, तो जान से मार दूंगा। उस समय ठेकेदार का कर्ज भी हमारे उपर था। मैंने सोचा 15 हजार रुपए लेकर ठेकेदार का छः हजार का कर्ज उतार देंगे। बचे पैसे से बेटे–बेटी की शादी भी कर लेगें। ठेकेदार को जब इसकी भनकी लगी तो वो हमारी जान का दुश्मन बन बैठा। इस पर रातों–रात मेरे पति को गांव छोड़कर मेरे मायके में शरण लेनी पड़ी।

दलितों के लिए समर्पित संस्था जन साहस

जन साहस एक स्वैच्छिक संस्था है। जो मध्यप्रदेश के देवास जिले में 1999 मे काम कर रही है। जन साहस गैरबराबरी, गरीबी, अस्पृश्यता, अशिक्षा और उपेक्षा के शिकार दलित एवं वंचित समुदाय के साथ काम कर रही है, जिसमें संस्था इन समुदायों के माध्यम से काम करती है। जन साहस की रणनीति जमीनी स्तर पर दलित वंचित समुदाय को विभिन्न गतिविधियों कर, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक उनके संगठन निर्माण करना है। जिसमें वे सकरात्मक परिर्वतन करते हुए, निर्णयों और विकास की प्रक्रिया से सीधे जुड़े। जन साहस इस रणनीति के तहत लोग शिक्षण/जागरूकता, प्रशिक्षण व कार्यशाला, संगठन निर्माण, सूचना संग्रह व दस्तावेजीकरण अध्ययन, नेटवर्किंग, पैरवी व लामबंदी का काम करती है। जन साहस द्वारा वर्तमान में निम्न काम किए जा रहे है।

जन साहस द्वारा देवास जिले में इस प्रथा से 135 दलित महिलाओं को मुक्त करवाया गया है, एवं जिले में 10 महिला संगठन बनवाए गए है। साथ ही जन साहस संस्था मध्यप्रदेश में गरिमा अभियान का राज्य स्तर पर समन्वय करने की भूमिका भी निभा रही है। यह अभियान राज्य के 10 जिलों में विभिन्न संस्थाओं द्वारा जमीनी स्तर पर ठोस रूप से चलाया जा रहा है।

गरिमा अभियान – भारतीय समाज में जातीय व्यवस्था के चलते मैला ढोने की अमानवीय प्रथा में लगी दलित महिलाओं इस प्रथा से मुक्त करवा कर अपने अधिकार दिलवाने के लिए गरिमा अभियान चलाया जा रहा है। गरिमा अभियान के तहत जन साहस द्वारा देवास जिले में इस प्रथा से 135 दलित महिलाओं को मुक्त करवाया गया है, एवं जिले में 10 महिला संगठन बनवाए गए है। साथ ही जन साहस संस्था मध्यप्रदेश में गरिमा अभियान का राज्य स्तर पर समन्वय करने की भूमिका भी निभा रही है। यह अभियान राज्य के 10 जिलों में विभिन्न संस्थाओं द्वारा जमीनी स्तर पर ठोस रूप से चलाया जा रहा है।

सामाजिक न्याय केन्द्र – जन साहस द्वारा देवास में सामाजिक न्याय केन्द्र चलाया जा रहा है। इस केन्द्र के माध्यम.से दलित वंचित समुदाय के लोगों के अधिकारों की पैरवी एवं उनके सशक्तिकरण के लिए काम लिया जा रहा है। केन्द्र द्वारा दलित वंचित समुदाय पर होने वाले अत्याचारों पर कार्यवाही एवं पैरवी की जाती है। केन्द्र में दलित वंचित समुदाय से जुड़ी खबरों की अखबार की कतरनों का संग्रह किया जाता है। केन्द्र में दलित वंचित समुदाय से जुड़े कानून साहित्य, किताबें गीत, फिल्में एवं पोस्टर उपलब्ध है। केन्द्र के माध्यम से दलित वंचित समुदाय के लोगों एवं संगठनों का प्रशिक्षण दिया जाता है। साथ ही दलित वंचित समुदाय से जुड़े मुद्दों पर अध्ययन एवं दस्तावेजीकरण भी किया जाता है।

दलित संगठन – जन साहस का गहरा विश्वास है कि सभी मूलभूत बदलाव प्रभावित समुदाय की पहल के बिना नहीं हो सकते है तथा इसे देखते हुए संस्था द्वारा दलित वंचित समुदाय के लोगों के संगठन निर्माण का कार्य किया जा रहा है। इसके तहत जन साहस द्वारा गांव एवं स्थानीय स्तर पर दलित संगठन एवं अम्बेडकर जन विकास संगठन का गठन किया जा रहा है। इन संगठनों के माध्यम से दलित एकता, अस्पृश्यता की समाप्ति, दलित शिक्षा एवं दलित सशक्तिकरण के काम किया जा रहा है। साथ ही दलित संस्कृति पर काम करते हुए कबीर भजन मण्डलियों के क्षमतावर्धन के लिए भी काम किया जा रहा है।

सखी पहल – देवास जिले के सोनकच्छ ब्लाक में जन साहस द्वारा महिलाओं के क्षमतावर्धन एवं सशक्तिकरण के लिए समावेश संस्था के साथ मिलकर सखी पहल कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

हमारे बारे में...

हमारे बारे में...

संगिनी महिलाओं का एक संदर्भ समूह है, जिसका उद्देश्य महिलाओं के साथ लैंगिकता के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव व हिंसा को समाप्त करना है। संगिनी महिला मुद्दों पर कार्य करने के लिये कटिबद्ध है, ख़ास तौर पर एक ऐसे समाज की स्थापना के लिये, जहां समानता आधारित सामाजिक व्यवस्था हो। इसके लिये हम इस संदर्भ केंन्द्र के द्वारा महिला मुद्दों पर शोध अध्ययन, दस्तावेजीकरण, प्रशिक्षण, प्रकाशन आदि गतिविधियों का क्रियान्वयन कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि महिलाओं के मुद्दों को केन्द्र में लाते हुए, ऐसे सवाल उठाए जाएं, जिनका जवाब हमारे ही इर्द गिर्द फैला हुआ है। आगामी समय में संगिनी महिला मुद्दों पर काम करने वाली संस्थाओं, संगठनों, व स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे लोगों के लिये एक संदर्भ केंद्र बन सके साथ ही महिलाओं के लिए बने कानूनों का प्रभावी तरीके से क्रियान्वयन हो सके यही हमारा प्रयास है।

संगिनी के कार्यों और उद्देश्यों में यह पूरी तरह स्पष्ट है कि संगिनी महिला हिंसा को जड़ से समाप्त करने के लिये कटिबद्ध है। भविष्य की रणनीति में भी संगिनी निरंतर अपने लक्ष्यपूर्ति की लिये कार्य योजना में संलग्न है। जिसके अंतर्गत महिला हिंसा व जेंडर के मुद्दों पर मध्यप्रदेश के स्थानीय समूहों से कार्यकर्ताओं को जेंडर व महिला हिंसा के प्रत्येक हिस्से पर काम करने के लिये प्रशिक्षण दिया जा रहा है, ताकि वे अपने समूह में साथियों के साथ मिलकर अपने अपने क्षेत्र में महिला हिंसा के खिलाफ माहौल बना सकें तथा समुदाय के संकीर्ण नज़रिये में परिवर्तन ला सकें।

संगिनी महिला हिंसा के सभी पक्षों पर सामग्री का निर्माण करेगी तथा ज्वलंत मुद्दों पर अध्ययन व विश्लेषणात्मक विवेचन का कार्य भी कर रही है, जिसके द्वारा सभी समूह एक समाज मंच पर आकर अपनी बात कह सकें और एक साथ मिलकर महिला हिंसा की जड़ से समाप्ति के लिये कार्य कर सकें।

❐ संगिनी समूह